वक्तव्य ।

सब पुराणों में दशावतार की कथा मिलती है। कहीं संक्षेप से और कहीं विस्तार से। पुराण संस्कृत में बने हैं, इस लिये सर्व-साधारण उन्हें पढ़ नहीं सकते और समझ भी नहीं सकते। इस लिये मैं ने दसों अवतारों की कथा यहां संक्षेप से लिखदी है। इस के लिखने में "प्रबन्ध शतकर्तृ महा कवि क्षेमेन्द्र लिखित संस्कृत "दशावतार चरित" से बड़ी सहायता मिली है। किन्तु कवियों के प्राचीन स्वभावानुसार उन ने अपने ग्रन्थ में शृङ्गार रस को बहुत स्थान दिया है। मैं ने उन अंशों को बिलकुल छोड़ दिया है, कारण यह कि यह ग्रन्थ मैं ने खास कर के लड़कों ही के लिये लिखा है और लड़कों को शृङ्गार रस से अलगही रखना ठीक है। सभी ग्रन्थकार तथा व्यास जी ने भी अपने पुराणों में रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र का वर्णन विस्तार से लिखा है। वही बात यहां भी हो गई। क्षेमेन्द्र ने कृष्णावतार में महाभारत की भी समूची कथा लिख दी है। मैं ने उस को एकदम छोड़ दिया है। हां, महाभारत की वही कथा इस में मैं ने लिखी है, जिस का पूर्ण सम्बन्ध श्री कृष्ण से है। क्षेमेन्द्र ने कृष्ण की कुछ कथाएँ छोड़ भी दी हैं, उन्हें मैं ने ब्रह्मवैवर्त्त तथा भागवत के अनुसार, बड़े संक्षेप से लिख दिया है। हां, एक बात और भी यहां कह देना ठीक है कि इस ग्रन्थ की भाषा सर्वसाधारण तथा खास कर के लड़कों के समझने के लिये बहुत सरल कर दी गई है, यदि लड़के इस से कुछ भी लाभ उठावेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

विनीत—अक्षयवट मिश्र

क्षेमेन्द्र का परिचय।

प्रबन्ध शतकर्त्तृ महाकवि क्षेमेन्द्र का जन्म कश्मीर देश में हुआ था। श्रीमहाराज "जयापीड" के मन्त्री "नरेन्द्र" के वंश में "भोगीन्द्र" का जन्म हुआ था। उन के पुत्र "सिन्धु," सिन्धु के पुत्र "प्रकाशेन्द्र" और उन के पुत्र "क्षेमेन्द्र" थे। ये ब्राह्मण थे। कश्मीर के राजा "अनन्तराज" की सभा में इन का बड़ा मान था। इन ने "सुवृत्त तिलक" आदि ग्रन्थों में अनन्तराज की बड़ी प्रशंसा लिखी है। ये अनन्त के पुत्र "कलशदेव" की सभा में भी रहे। अनन्तराज सन् १०२८ ई० से १०८० ई० तक वर्तमान थे। उन के पुत्र "कलकादेव" सन् १०८३ ई० में राजसिंहासन पर बैठे। ये दोनों बातें राजतरङ्गिणी से सिद्ध होती हैं। इस कारण क्षेमेन्द्र भी १०२८ ई०से १०८३ ई० तक जीवित थे, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। क्षेमेन्द्र ने "समयमातृका" में लिखा है "तस्यानन्त महीपतेर्विट-जसः प्राप्ताधिकारोदये। क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पञ्चरत्नाक्षमम्।" फिर दशावतार चरित में लिखा है–"राज्ये कलशभूभर्तः कश्मीरेष्वच्युतस्तवः।" ये वैष्णव थे, यह बात भी इसी ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक—"स्तुतिसंकीर्त्तनाद्विष्णोर्विपुलं यन्मयार्जितं। तेनास्तु सर्वलोकानां, कल्याणकुशलोदयः।" से अच्छी तरह प्रगट हो जाता है। इन का ब्राह्मण होना भी इसी ग्रन्थ के "विप्रेन्द्र प्रतिपादितान्नभवनभू गोसंघकृष्णाजिनैः" इत्यादि पदों से साफ झल-

कता है। ये व्यास जी के बड़े भक्त थे, इसलिये इन का दूसरा नाम "व्यासदास" था।

क्षेमेन्द्र ने सौ पुस्तकों की रचना की थी, इसलिये इन को सब लोग "प्रबन्धशत कर्त्ता" कहा करते थे। श्लोकसंख्या का हिसाब लगाने से जान पड़ता है कि संस्कृत साहित्य में व्यास के बाद क्षेमेन्द्र ही का नम्बर है। यदि अठारहो पुराण एक ही व्यास जी के बनाये मान लिये जायं, तो उन के ग्रन्थों की श्लोकसंख्या चार लाख है। और इन के बनाये ग्रन्थों की श्लोकसंख्या दो लाख से कुछ अधिक ही है। इन ने सौ ग्रन्थ लिखे थे, पर आज कल इन के नीचे लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं। उन में अवदान कल्पलता, भारतमञ्जरी, रामायण मञ्जरी, बृहत्कथा मञ्जरी और शशिवंश महाकाव्य बहुत बड़े हैं। अवदान कल्पलता में बाईस हज़ार श्लोक हैं। और पुस्तकों की भी वही दशा है।

निस्सन्देह ये महाकवि थे। महाकवियों में जो जो गुण होने चाहिये वे सभी गुण इन में थे। मुझे पूर्ण आशा है कि जो क्षेमेन्द्र के रचे ग्रन्थों का पाठ करेंगे वे अवश्य ही श्लोक-संख्या के हिसाब से व्यास के बाद और साहित्य सौन्दर्य के हिसाब से कालिदास के बाद क्षेमेन्द्र को स्थान देंगे। मैंने इन के नीचे लिखे हुए ग्रन्थों को पढ़ा है, इस लिये इन की अथाह विद्वत्ता का परिचय मुझे अच्छी तरह मिल चुका है।

क्षेमेन्द्र कवि के ग्रन्थ।

१ अवदान कल्पलता।
२ बृहत्कथा मंजरी।
३ दशावतार चरित।
४ भारतमंजरी।
५ रामायण मंजरी।
६ कला विलास।
७ अमृत तरङ्ग काव्य।
८ औचित्य विचार चर्चा।
९ कनक जानकी।
१० कवि कण्ठाभरण।
११ चतुर्वर्ग संग्रह।
१२ चारुचर्या।
१३ चित्रभारत नाटक।
१४ देशोपदेश।
१५ नीतिशतक।
१६ पद्यकादम्बरी।
१७ पवनपञ्चाशिका।
१८ मुक्तावली
१९ राजावली
२० लावण्यवती
२१ लोकप्रकाशकोष।
२२ वात्स्यायनसूत्र का सार
२३ व्यासाष्टक।
२४ शशिवंशमहाकाव्य।
२५ समयमातृका।
२६ सुवृत्ततिलक
२७ सेव्य सेवकोपदेश।
२८ हस्तिजनप्रकाश।
२९ अवसरसार।
३० नीतिलता।
३१ मुनिमतमीमांसा।
३२ ललितरत्नमाला।
३३ विनयवल्ली।
३४ दर्प दलन।

सूचीपत्र

दशावतार कथा

मत्स्यावतार

एक बार प्रजापति मनु सारी पृथिवी की परिक्रमा करने निकले। उन ने घूम घूम कर सब तीर्थ देखे। अन्त में वे बदरिकाश्रम में पहुंचे, जहां नरनारायण भगवान निवास करते हैं। वहां वे बैठ कर भगवान् के दर्शन पाने की इच्छा से तप करने लगे। एक बार उन ने स्नान करते समय एक छोटे से गढ़े में एक मछली का छोटा सा बच्चा देखा। उस गढ़े में पानी बहुत कम था। वह बच्चा उस गढ़े के कीचड़ में बड़ी बड़ी मछलियों के डर से घुसा जाता था। उस बच्चे ने मनु को देख कर डरते हुए धीरे धीरे कहा "हे करुणानिधान मनु! मुझे बड़ी बड़ी मछलियां बहुत सताती हैं। वे बड़ी बलवती हैं और मैं बहुत ही निर्बल हूं। इसलिये जब उन्हें भूख लगती है तब वे मुझे ही खाने दौड़ती हैं। आप मुझे बचाइये। देखिये, शास्त्रों में लिखा है कि—डरे हुए का डर छुड़ाना, निर्बल की सहायता करनी, और विपत्ति में फंसे हुए जीव को धैर्य देकर उस का हाथ पकड़ना, ये सब महापुरुष के काम हैं।" उस बच्चे की उपदेश भरी बात सुन कर मनु आश्चर्य में पड़ गये।

उन्हें दया आ गई। इसलिये उन ने उस बच्चे को उठा लिया। फिर अपने आश्रम में आकर उन ने उस बच्चे को पानी के घड़े में डाल दिया। कुछ दिनों में वह बच्चा बड़ा हुआ। तब मनु ने उस को अपने आश्रम के समीप एक बावली में डाल दिया। बच्चा थोड़े ही दिनों में बढ़ कर इतना बड़ा हो गया कि वह उस बावली में नहीं अंट सका। मनु ने उस को गङ्गा की धारा में डाल दिया। वहां भी वह बच्चा ऐसा बढ़ गया कि गङ्गा की धारा रुक गई। तब लाचार होकर मनु ने किसी प्रकार उस बच्चे को समुद्र में पहुंचाया। थोड़े ही दिनों में उस मछली के बच्चे ने बढ़ कर सारे समुद्र को ढ़ंक लिया। उस बच्चे की ऐसी गति देख कर मनु को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे समुद्र के तीर पर खड़े होकर उस का तमाशा देखने लगे। इसी समय उस बच्चे ने मनु से कहा—" हे प्रजापति मनु! देखिये, कैसा कठिन समय आ गया है। सारा संसार पापमय हो रहा है। सभी बातें उलटी हो रही हैं। सभी लोग परस्त्रीगामी हो गये हैं। दूसरे का धन और प्राण हरण करने में कोई नहीं सकुचते। सभी कामी, क्रोधी और लोभी हो रहे हैं। सभी पाप में धन लुटा रहे हैं, इसलिये वे तुरत ही दरिद्र भी हो रहे हैं। चोरी तो इतनी बढ़ गई है कि दाहिना हाथ भी बाएं हाथ की चीज़ें चुराने के लिये झपटता है। सब का धर्म छूट गया है। ब्राह्मण दूसरे की नौकरी करते हैं, शूद्र तप करते हैं और वे ही ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सभी जातियों को मंत्रोपदेश कर के चेले बना रहे हैं। वे ही खेती, वाणिज्य, गोरक्षा आदि वैश्यकर्म भी करते हैं। वैश्य अपना कर्म छोड़ बैठे हैं और

ब्राह्मण की कन्याओं के साथ अपना विवाह करते हैं। शूद्र आचार्य बन कर दूसरी जातियों से यज्ञ आदि सभी कर्म करा रहे हैं। संसार की ऐसी दुर्गति हो गई है कि जिस का कुछ ठिकाना नहीं। पवित्रता, सत्यता, परोपकार, शान्ति, आदि गुण तो एक-दम मिट गये हैं। जहां देखिये वहां ही लड़ाई झगड़ा हो रहा है। दरिद्र दूसरे का धन देख कर जलते हैं। सुख का तो कहीं नाम भी नहीं सुन पड़ता। स्त्रियाँ निर्भय हो कर मनमाना काम कर रही हैं। इन लक्षणों से जान पड़ता है कि संसार का प्रलय हो जायगा। अब थोड़े ही दिनों में प्रलयकाल के मेघ ऐसी भयानक वर्षा करेंगे कि जिस से सब समुद्र एक में मिल जायँगे और सारा संसार उसी में डूब जायगा। मैं ने एक नाव बना रखी है जिस पर सब चीज़ों के बीज थोड़े थोड़े रखे हुए हैं। आप सातों ऋषियों के साथ उसी पर बैठें। यदि आप बचे रहेंगे तो समय पाकर फिर संसार बन जायगा।"

उस बड़ी मछलीकी यह बात सुनकर मनु डरगये। उनका शरीर कांपने लगा। "अच्छा, ऐसा ही करूंगा" यह कहकर वे अपने आश्रममें लौट आये। थोड़े ही दिनोंके बाद सूर्य बड़ेही तप्त होकर अपनी बारहों कलाओंसे तपने लगे, जिनसे सारे संसारमें आगही आग धधकने लगी। सूर्यकी किरणोंसे निकली हुई आग ऐसी बढ़ी कि सारा संसारही जलकर भस्म हो गया। जिसमें सभी प्राणी, तथा वृक्ष, लता, आदि समस्त चर और अचर जीव, जलकर भस्म हो गये। कुछ दिनों के बाद यमराज के भैंसों के समान डरावने और काले मेघों के झुण्ड चारों ओर से घिर आये और बड़ी भयङ्कर वर्षा करने लगे। बड़े वेग से मूसलाधार पानी बरसने

लगा, जिस से सारा जगत् डूब गया। जहां देखिये वहां ही पानी के सिवा कुछ भी नहीं देख पड़ता था। आकाश, पाताल सभी जलमय हो गये। मनु भी बहुत घबड़ाये। उस समय उन को मछली के बच्चे की बात याद आई। वे दोनों हाथों से पानी उलीछने लगे। थोड़ीही देर के बाद मनु ने उस बच्चे को देखा। वह इतना बड़ा हो गया था कि उस ने सारे जल को ढँक लिया था। उस की दोनों आंखें सूर्य तथा चन्द्रमा के समान चमक रही थीं, जिन के प्रकाश से तीनों लोकों में उजियाला फैल गया था। उस के सिर पर एक बहुत ही बड़ी सोने की सींग निकल आई थी, जिस की चमक वड़वानल नामक अग्नि के समान धधक रही थी। वह महाकाय मछली अपनी पूंछ बड़े ज़ोर ज़ोर से पानी में पटक रही थी, जिस से पानी में बड़ी भयावनी लहरें उठ रही थीं। उस के सांस लेने से पानी में बौछारों का समूह उठ रहा था। जब वह उछलती थी तब उस का शरीर कैलाश पर्वत के समान आकाश में जा लगता था। उसे देखते ही मनु ने समझ लिया कि ये भगवान् विष्णु हैं। उन ने झट सिर झुका कर बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया। प्रणाम करते ही उन ने देखा कि उस मछली की सींग में एक बहुत बड़ी नाव बंधी है। उसे देख कर उन के हृदय में धीरता आ गई। इस के बाद मछली ने कहा—"ऐ मनु! आओ, इस नाव पर चढ़ जाओ।" उस का यह वचन सुनते ही मनु सातों ऋषियों को लेकर उस नाव पर चढ़ गये।

उस महाप्रलय के समय मार्कण्डेय मुनि निराधार हो कर

उधर इधर बहते फिरते थे। उन ने देखा कि सारा संसार ही जलमय हो गया है। कहीं ठहरने की जगह नहीं है। वे सोचने लगे "अब क्या करना चाहिये। कब तक यह जल हटेगा। हाय! वे सब गांव, पहाड़ तथा सारी पृथिवी कहां चली गईं! वे चन्द्र, सूर्य और तारे क्या हो गये! हा! देखते ही देखते सारा संसार स्वप्न के समान नष्ट हो गया। वे माननीय मुनिगण कहां चले गये, जिन के तप से सारा संसार ठहरा था! वे महावीर, पराक्रमी तथा साहसी क्षत्रिय महाराज क्या हो गये, जिन से पृथिवी की शोभा होती थी! मैं सोचता हूं कि जैसे सज्जनों का क्रोध, नीचों की विनय और स्त्रियों की धीरता तुरत नष्ट हो जाती हैं, वैसे ही सब नष्ट हो गये। जैसे पाप से कमाया हुआ धन बात की बात में बिला जाता है, वैसे ही सब बिला गये। क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं!" फिर मार्कण्डेय मुनि चेष्टा कर पानी में दोनों हाथों के बल तैरने लगे। तैरते तैरते वह नाव देख पड़ी। मुनि ने उसे देखतेही उछल कर झट उस नाव को पकड़ लिया। फिर उन ने देखा कि यह नाव आकाश में जा लगी है। जिधर जिधर वह मछली दौड़ती थी उधर ही उधर उस की सींग में बन्धी हुई वह नाव भी खिंची जा रही थी और मुनि भी उसे हाथ से पकड़े खींचे जा रहे थे। बड़े वेग से भयंकर हवा चल रही थी, जिस से उस जल में पर्वत सी ऊंची ऊंची लहरें उठ रहीं थीं। कहीं कहीं हवा के वेग से पानी में बड़े बड़े गढ़े बन जाते थे। कहीं कहीं हजारों कोसों की जल की चादर बन रही थी, जिसे देख कर ज्ञान पड़ता

था कि यह संगमार्बल से ढकी लम्बी चौड़ी ज़मीन है। मुनि उस भयङ्कर जल में डूबे जा रहे थे। उन की नाक तक पानी आ रहा था। थकावट से हांप रहे थे। नाव हाथ से छूट गई। चारों ओर अन्धेरा छा रहा था। कहीं सूर्य, चन्द्रमा और तारों का कुछ भी पता नहीं था। इस लिये कहीं दिन या रात कुछ भी नहीं जान पड़ता था। समय का भी कुछ ज्ञान नहीं होता था। इसी तरह लुढ़कते पुढ़कते मार्कण्डेय मुनि बीच जल में आ पहुंचे। वहां जा कर उन ने चारों ओर देखा तो न कहीं नाव है, न कहीं सप्तर्षि हैं और न वह प्रजापति मनु ही हैं। वह मछली भी नहीं देख पड़ी। अब तो मुनि बहुत ही घबड़ाये।

इसी समय मार्कण्डेय ने फिर उसी पानी के बीच से निकले हुए एक बड़ के बड़े पेड़ को देखा, जिस की हज़ारों डालें सोने, चांदी, हीरे, मोती के समान चमक रही थीं। उस के एक बड़े पत्ते पर बालस्वरूप भगवान् को देखा, जिन की आंखें कमल के समान थीं और जिन के सब शरीरों में अनेक प्रकार के रत्नों के भूषण चमक रहे थे। मुनि उन के पास पहुंचे। उसी समय भगवान् चुल्लू में पानी भर कर उस के साथ मुनि को भी पी गये। मुनि उन के पेट में चले गये। वहां उन ने सभी पर्वतों, समुद्रों, द्वीपों, नदियों, नगरों, तीर्थों, वनों और जगत के सभी पदार्थों को देखा। मुनि सारे पेट में घूम आये, पर कहीं उस का अन्त न मिला। बहुत दिनों के बाद मुनि उन के पेट से

निकले। बाहर आकर उन ने देखा कि उन बालक परमेश्वर की नाभि से कमल निकल आया है और उस से ब्रह्मा उत्पन्न हो गये हैं। ब्रह्मा के मन से सब प्रजापति उत्पन्न हो आये हैं, जिन से सारा संसार पैदा हो गया है। जैसा पहले जगत् था, ठीक वैसा ही बन गया।

कूर्मावतार

जगत् की रचना करने में चतुर प्रजापति दक्ष को इक्यावन कन्याएं हुईं। उन में बड़ी लड़की "उमा" का विवाह शिवजी से हुआ। तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप से, सत्ताईस लड़कियों का विवाह अत्रि ऋषि के पुत्र चन्द्रमा से और दस लड़कियों का विवाह धर्म से हुआ। कश्यप की 'अदिति' नाम की स्त्री से देवता और 'दिति' से दैत्य उत्पन्न हुए। 'कद्रू' से नाग, 'विनता' से चिड़ियों के राजा गरुड़, तथा अरुण, 'दनु' से दानव, 'सरमा' से कुत्ते तथा और दूसरी दूसरी स्त्रियों से हंस आदि पक्षी, पशु आदि सभी जीव उत्पन्न हुए। सभी देवता और दैत्य समय पा कर बड़े बड़े हो गये। दोनों का बल बहुत बढ़ गया। उन लोगों की यह इच्छा हुई कि इस दुग्ध समुद्र को मन्दर पर्वत से मथ कर अमृत निकालना चाहिये। फिर उन लोगों ने बड़ी प्रार्थना के साथ विष्णु से कहा कि "आप कृपा कर के इस मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर ले लीजिये, जिस से हम लोग समुद्र को भली भांति मथें। उन दैत्यों तथा देवताओं की प्रार्थना मान कर विष्णु भगवान् ने मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर ले लेना स्वीकार कर लिया।

जब देवता और दैत्य पानी में उतर आये, तब विष्णु आकर के बीच खड़े हुए। उस समय समुद्र मनुष्य का रूप धारण

कर विष्णु के पास आया और हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से बोला "हे भगवन् ! आप ब्रह्मा हो कर सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णु बन कर जगत् की रक्षा करते हैं और शिव बन कर जगत् का नाश करते हैं। आप एक ही हैं, किन्तु कार्य के लिये इन तीनों रूपों को धारण करते हैं।" यदि आप की इच्छा है कि ज़रूर ही समुद्र का मथन किया जाय, तो आप कोई ऐसा उपाय करें जिस से मन्दर पर्वत पाताल न चला जाय। बहुत ही अच्छा होता, यदि आप उस को धारण करने के लिये स्वीकार करते। समुद्र की दीनता भरी ऐसी वाणी सुन कर विष्णु ने मन्दर का धारण करना स्वीकार कर लिया और आप एक बहुत बड़े शरीर वाला कूर्म (कछुआ) बन गये और समुद्र में अपने हाथ पैर फैला कर उधर इधर घूमने लगे। उस समय इन के हाथ पैर के धक्के से समुद्र में बड़ी बड़ी लहरें उठ कर आकाश में जा लगीं। थोड़ी देर बाद उन ने बड़े वेग से मन्दर पर्वत को उठा कर अपनी पीठ पर रख लिया और उस के बड़े बोझ को ऐसे सहन कर लिया जैसे बुद्धिमान् मनुष्य अपना कार्य सिद्ध करने के लिये नये दुष्ट राजा के अन्यायों को सह लेता है। फिर विष्णु की सम्मति से सर्पों के महाराज "वासुकि" मथने के लिये डोरी बनाये। उस बड़ी मोटी डोरी के समान वासुकि से वह मन्दराचल लपेटा गया। देवता और दैत्य समुद्र के अथाह जल में उतर आये। दैत्य वासुकि के मुंह की ओर, और देवता पूंछ की ओर खड़े हो गये। फिर दैत्यों ने वासुकि का गला पकड़ कर और देवताओं ने पूंछ पकड़ कर खींचना प्रारम्भ कर दिया। उस

समय मन्दर पर्वत मथनी के समान घूमने लगा। तब बड़ी घरघराहट पैदा हुई। जान पड़ता था कि प्रलयकाल के मेघ गरज रहे हैं। समुद्र मथते मथते, उस से "ऐरावत" हाथी उत्पन्न हुआ, जिस का शरीर हिमालय पर्वत के समान श्वेत और ऊंचा था। उस के चारों दांत बड़े मोटे ऊंचे खम्भों के समान जान पड़ते थे। एक बहुत सुन्दर घोड़ा भी उत्पन्न हुआ, जिस के शरीर में कोई दोष नहीं था। उस का नाम "उच्चैःश्रवा" रखा गया। इन दोनों को भी विष्णु भगवान् ने देवराज इन्द्र को सौंप दिया। फिर समुद्र मथन होने लगा। अब वासुकि का सारा शरीर गर्म हो गया। वे बड़े ज़ोर ज़ोर से हांपने लगे। उन के मुंह से फेन की धारा बहने लगी। थोड़ी देर के बाद "चन्द्रमा" उत्पन्न हुए। विष्णु ने चन्द्रमा को लेकर शिव जी की जटा में लगा दिया, जिस से शिव जी के जटामुकुट की बड़ी शोभा हुई। यह अच्छा ही हुआ। अच्छी चीज़ को अच्छी ही जगह पर रखना ठीक होता है और इस से उस चीज़ की प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। फिर समुद्र से "कौस्तुभमणि" निकली, जिस की चमक से चारों ओर उजाला छा गया। विष्णु ने उस को अपने हृदय में लगा लिया, जैसे सज्जन दूसरे के किये हुए उपकार को हृदय में धारण करते हैं। थोड़ी ही देर के बाद एक बड़ा सुन्दर पेड़ उत्पन्न हुआ, जिस की डालें सोने और मूंगे की थीं। उस के पत्र, फूल और फल हीरा, मोती, पन्ना, नीलम, पुखराज, मानिक आदि रत्नों के थे। उस का नाम "कल्पवृक्ष" और "पारिजात" रखा गया। विष्णु ने उस को इन्द्र के बगीचे में रोपवा दिया। इस के बाद उस

समुद्र से "कालकूट" नामक विष उत्पन्न हुआ, जिस की हवा लगने से देवता और दैत्य मूर्छित हो रहे थे। उस समय विष्णु ने शिव जी से प्रार्थना की कि आप इसे झट पी जाइये, नहीं तो सारा संसार ही जल जायगा। शिव जी को लाचार हो कर विष्णु की बात माननी पड़ी। शिव जी कालकूट को उठा कर पी गये, जिस की ताप से उन का गला काला हो गया। इसी से उन का नाम "नीलकण्ठ" पड़ गया। यद्यपि वह भयानक विष बड़ा ही दुखदायी था तौभी उस से उस गोरे शरीर वाले शिव जी की बड़ी शोभा हुई। जान पड़ता था कि उन के गले में कस्तूरी लगी है। इस के बाद उस समुद्र से "लक्ष्मी" उत्पन्न हुई, जिन का शरीर मक्खन के समान कोमल और चिकना था। उन के शरीर की चारों ओर चांदनी सी ज्योति छिटक रही थी। विष्णु ने उस परम सुन्दरी स्त्री को अपनी प्राणप्यारी पत्नी बना लिया। इसीलिये विष्णु का नाम "लक्ष्मीपति" और "श्री रमण" पड़ा। इस के बाद, हाथों में अनेक प्रकार की औषधियां लिये हुए "धन्वन्तरी" उस समुद्र से उत्पन्न हुए। उन औषधियों की हवा लगने से देवता तथा दैत्यों की थकावट दूर हो गई। उन्हें देख देवता और दैत्य बहुत प्रसन्न हुए। थोड़ी ही देर के बाद एक घड़ा निकला, जिस में अमृत भरा था। दैत्य उस घड़े को लेने के लिये झपटे। देवता भी उसे ही लेने के लिये दौड़े। दैत्य तो पहले ही से क्रोधित थे, क्योंकि समुद्र से जो जो चीज़ें उत्पन्न हुई थीं उन्हें देवताओं ने ही आपस में बांट लिया था। दैत्यों को कोई चीज़ नहीं मिली थी। हाथी, घोड़ा, मणि, चन्द्रमा

और लक्ष्मी को देवताओं ने ही ले लिया था। बस ! अब क्या था ! दोनों में लड़ाई होने लगी। विष्णु ने अच्छा अवसर पाया। उन ने देखा कि कलस एक किनारे पड़ा है। झट उन ने उस घड़े को उठा लिया। इधर कूर्म भगवान ने मन्दराचल को अपनी पीठ से उतार कर जहां का तहां रख दिया। फिर विष्णु विचारने लगे कि अब क्या करना चाहिये। कुछदेर सोच विचार कर एक बड़ी सुन्दरी स्त्री बन गये। उस स्त्री का शरीर बड़ा गोरा और पतला था, जैसे कामदेव की तीखी तलवार हो। सुन्दरता उस की देह पर छलक रही थी। वह अपने प्रेम भरे भावों से दैत्यों को मोहित करती हुई उन्हीं दैत्यों की ओर आ पहुंची। उस का शृङ्गार तथा हाव भाव देख कर दैत्य मोहित हो गये, यहां तक कि उन को अमृत के घड़े की तनिक भी सुधि न रही। रहे कैसे; वे तो काम से विह्वल हो रहे थे। जिस समय उन दैत्यों की आंख उस स्त्री पर जा पड़ी, उस समय इन की सब चतुरता ही जाती रही। चन्द्रमा की स्वच्छ चमकीली चन्द्रिका सी उस की हंसी देख उन का सारा ज्ञान नष्ट हो गया। अब वे अमृत को न ले ही सकते थे, न छोड़ ही सकते थे। उन लोगों ने अमृत पीने की चाह छोड़ दी। अब तो वे प्रेम से भरे अधरामृत को पीने के लिये ललचने लगे। उन का सारा प्रताप नष्ट हो गया। वे आपस में कहने लगे "वाह! यह कैसी सुन्दर स्त्री है! इस का मुंह चन्द्रमा के समान, चाल मतवाले हाथी के समान, देह की लुनाई अमृत के समान, सुन्दरता लक्ष्मी के समान और दोनों ओठ मानिक के समान हैं। जान पड़ता है कि समुद्र से उत्पन्न हुए सभी

पदार्थों को देवताओं ने ले लिया, हमलोगों को कुछ भी नहीं मिला, इस लिये समुद्र ने डर कर हमलोगों को प्रसन्न करने के लिये इस स्त्री को भेजा है। यदि हम लोग इस के कमल के समान कोमल हाथों से दिये हुए अमृत को नहीं पीयेंगे तो हम लोगों के सभी परिश्रम व्यर्थ हो जायंगे। समुद्र का मथना भी तो व्यर्थ ही होगा। बस! सब झगड़ा मिट गया। सब दैत्यों ने अमृत का घड़ा उसी सुन्दरी के हाथ में रहने दिया। वह सुन्दरी उस घड़े को लेकर देवताओं के पास पहुंची। झट देवता लोग पांत लगा कर अमृत पीने के लिये बैठ गये। राहु विष्णु की चतुरता समझ गया। वह झट देवता बन कर देवताओं के बीच अमृत पीने के लिये बैठ गया। वह अमृत पीने की चाह से व्याकुल हो रहा था। राहु की दाहिनी ओर सूर्य और बाईं ओर चन्द्रमा थे। राहु का, बवड़ा कर बड़ी शीघ्रता के साथ जीभ लपलपाकर, अमृत पीना देख कर उन दोनों ने राहु को पहचान लिया कि यह राक्षस है। सूर्य और चन्द्रमा की बात समझ कर विष्णु ने चक्र से राहु का गला काट दिया। बिचारे की डकार भी पूरी तरह न निकली थी, उसी समय उस का बध हुआ। यह दशा देख कर सब राक्षस उधर इधर चले गये। जो हो, भगवान विष्णु ने देवताओं के उपकार के लिए इतने कष्ट उठाये, कूर्म (कछुआ) बन कर अपनी पीठ पर मन्दर पर्वत को धारण किया, समुद्र का मन्थन कराया, देवताओं को अमृत पिलाया, समुद्र से निकले हुए रत्न देवताओं को दिये और लक्ष्मी को लेकर आप सुखी हुए।

वराहावतार

दैत्यों का एक राजा हिरण्याक्ष था। वह बड़ा प्रतापी था। उस ने बड़ी तपस्या की। तप के बल से उस ने इन्द्र को जीता और सारे संसार का राजा बन गया। एक दिन वह अपनी राज-सभा में बैठा था। उस की चारों ओर विप्रचित्ति, द्रुम, भौम, तारक, शुम्भ, निशुम्भ, अन्धक, जम्भ, शंबर, वृत्र आदि बड़े बड़े असुर बैठे थे। हिरण्याक्ष ने उन दैत्यों से कहा—"क्या आप लोगों ने देवताओं की धूर्तता देखी? उन लोगों ने कैसा पाप किया है! उन का यह कर्म मेरे हृदय में जहरीले बाण के समान बिंध गया है। वह अब तक मेरे हृदय में असह्य पीड़ा तथा ताप उत्पन्न कर रहा है। दुष्ट जन उस दुराचरण तथा पाप से भी नहीं लज्जित होते, जिन के करने में सज्जन लोग लज्जित होते हैं। दुष्ट जन अपने कपट तथा धूर्तता ही को चतुरता समझते हैं। विष्णु ने स्त्री का रूप धारण कर अमृत चुराया है; उन की यह निन्दा चारों ओर फैल गई है। जब तक यह जगत् रहेगा तब तक उन का यह अयश लेख सदा लिखा रहेगा। कभी मिटने वाला नहीं। कपट कर के देवताओं ने अमृत पी लिया, जिस से वे अजर और अमर हो गये हैं। किन्तु जब हम लोगों के पराक्रम से दुःखी होते हैं, तब अपने दीर्घ जीवन की निन्दा करते हैं। धन हुआ, यदि दान और भोग नहीं हुआ, तो वह धन व्यर्थ ही है। अहंकार तथा

द्वेष रखने वाले विद्वान् की विद्या व्यर्थ है। दूसरे को दिखलाने के लिये व्रत करना निकम्मा है। विपत्ति और अप्रतिष्ठा से जीवन एक प्रकार का बोझा ही है। उस मनुष्य का एक क्षण भी जीना अच्छा है, जिस ने अपने तेज तथा भुजबल से सम्पत्ति इकट्ठी की, और उस का सुखपूर्वक भोग किया। किन्तु उस मनुष्य का दुःखमय दीर्घजीवन भी व्यर्थ है, जिस के दिन घर घर याचना करने ही में कष्ट से बीतते हैं, इतने पर भी उस का पेट नहीं भरता। उस की लम्बी ज़िन्दगी भी कौवे की लम्बी ज़िन्दगी के समान दुःख देने वाली है। अब मैं ने देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है। वे अमृत पीने के कारण मर नहीं सकते, किन्तु अपने जीवन को बड़े कष्ट से बिता रहे हैं। उन को भूखों मरना पड़ता है। वे पृथिवी पर तीर्थों तथा वनों में घूम रहे हैं। बड़ा भारी अनादर पाने से उन के तेज और प्रताप नष्ट हो गये हैं। उन की सब सम्पत्तियां भी नष्ट हो गई हैं। विपत्ति में शीघ्रता से भागने के कारण उन की देवियां इधर उधर छूट गई हैं। वे अपने शत्रुओं का नाश नहीं कर सकते, इस लिये उन के पैरों पर पड़ा करते हैं। यद्यपि मेरे शत्रु देवताओं का केवल शरीर ही बच गया है, तथापि उन की ओर से असावधान होना ठीक नहीं है। इस लिये उन परदेशनिवासी देवताओं का जड़ से नाश ही कर देना उचित है।"

इस प्रकार उस दैत्यराज हिरण्याक्ष ने अपने मन का विचार दैत्यों से कहा, क्योंकि उस का हृदय क्रोध से जल रहा था। उस की बात सुन कर दैत्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई। कारण यह कि

अमृत के नहीं मिलने से सभी दैत्य बहुत अप्रसन्न थे। उन लोगों ने हिरण्याक्ष से कहा "हमलोग तो आप ही के अधीन और आज्ञाकारी हैं। आप ही के दबाने से हमलोग शत्रुओं का निरादर सह रहे हैं। देवताओं से हार जाने के कारण हमलोगों के शरीर में कलङ्क लग गया है; उस को देवताओं की स्त्रियों के आंसुओं से धो देना चाहिये। वह ऐरावत हाथी, वह उच्चैःश्रवा घोड़ा, वह कौस्तुभ मणि, वह परम सुन्दरी लक्ष्मी, वह चन्द्रमा और वह पारिजात वृक्ष, ये सभी पदार्थ देवताओं ने हमलोगों के देखते ही देखते ले लिये और हमलोग चित्र के समान चुपचाप खड़े ही रह गये। उन सब दुःसह अनर्थों को भी महाभिमानी दैत्यों ने अमृत पीने की आशा से सह लिया। हाय! वह अमृत भी दैत्यों को नहीं मिला। हमलोगों के सभी परिश्रम व्यर्थ हो गये। अमृत के लोभ से हमलोगों ने अपना अभिमान नष्ट कर दिया। बहुत सोच विचार करने का कुछ प्रयोजन नहीं है। अब तुरत अपनी भलाई का उपाय करना चाहिये। अब ऐसा ही काम करना ठीक है जिस से देवताओं का नाम भी इस जगत में न रह जाय। सब प्रकार उन का नाश ही कर देना अच्छा है।"

महा क्रोध के आवेग से मूर्च्छित हो कर दैत्यों ने दैत्यराज हिरण्याक्ष से यह वचन कहा। उन का यह वचन सुन कर हिरण्याक्ष बहुत प्रसन्न हुआ। उस ने अपने मन्त्रियों से कहा— "आप लोगों ने बहुत ही ठीक बात कही है। ऐसा ही करने से आगे में हमलोगों की भलाई होगी। आप लोगों का बताया उपाय भी बहुत ही ठीक है। हमलोग देवताओं का विनाश

करने के लिये तैयार हो जायं। आज कल देवता लोग पृथिवी ही पर घूमते, फिरते और रहते हैं। इस लिये सब से पहले पृथिवी ही को चुरा लेना चाहिये। मैं आज्ञा देता हूं कि मेरे बड़े बड़े बलवान सेनापति दैत्य पृथिवी को उठाकर पाताल में लेते चले जायं और ऐसी जगह चुरा कर रखें जिसे कोई देख न सके। इस उपाय से अवश्य शत्रुओं का नाश हो जायगा।" दैत्यराज का क्रोधभरा ऐसा वचन सुन कर सब दैत्य पृथिवी को चुराने की तैयारी करने लगे। चारों ओर से दैत्यों की सेना इकट्ठी होने लगी। उन लोगों ने पृथिवी को धारण करनेवाले मतवाले बलवान दिग्गजों को मार भगाया और तुरत ही पृथिवी को पाताल में ले जाकर छिपा दिया।

अब तो सारा संसार ही महा अन्धकार में जा पड़ा। उन लोगों के दुःख का कुछ पारावार ही नहीं था। भगवान से उन लोगों का दुःख नहीं देखा गया। वे तुरत "बराह" (सूअर) बन कर पाताल में चले गये। उस समय उन का रूप काले पत्थर के पहाड़ के समान जान पड़ता था। उन के दोनों हाथ में शंख और चक्र थे, जो चन्द्र और सूर्य के समान चमक रहे थे। अकाल संध्या के समान उन की आंखें लाल हो रही थीं। उन के शरीर की चमक से शत्रुओं की आंखों में चकाचौंध सी लग जाती थी। वे सातों पातालों के नीचे एक खोह में जा पहुंचे। वहां जाकर उन ने पृथिवी को देखा। दैत्यों ने पृथिवी की बड़ी दुर्दशा कर दी थी।

वराह भगवान् ने बड़ी सुगमता से उस पृथिवी को अपने विशाल दांतों पर उठा लिया। उन के चमकीले विशाल दांतों पर काली पृथिवी की बड़ी शोभा हुई। वह श्वेत चन्द्रमा पर काले चिन्ह के समान शोभा पाती थी। साधारण शूकरों के दांतों में लगी हुई मोथे की जड़ जैसी जान पड़ती है वैसी ही वह पृथिवी वराह भगवान् के दाँतों पर हलकी जान पड़ती थी। पृथिवी की यह दशा देख, हिरण्याक्ष बड़ा क्रोध कर दौड़ा। अमृत के चुराने की बात भी उसे याद आई। इसलिये उस का क्रोध और भी बढ़ गया। उस के साथ एक बहुत बड़ी सेना भी चली, जिस की धूल से सूर्य छिप गया और चारों ओर रात के समान अंधेरा हो गया। वे लोग बाण, पत्थर, मुग्दर, त्रिशूल, पाश, अंकुश, बर्छी, तोमर आदि शस्त्र वराह भगवान् पर फेंकने लगे। वे सब अस्त्र शस्त्र वराह के शरीर में जा लगे। जान पड़ता था कि मेघ पहाड़ पर जल की धारा बरसा रहे हैं। वराह भगवान् ने अपना शरीर और भी बढ़ा दिया, जो आकाश तथा पाताल तक जा लगा, जिस से जान पड़ता कि आज ही प्रलय हो जायगा। उसी समय वराह ने पृथिवी को, ठीक जगह पर स्थिर कर के रख दिया और वे हिरण्याक्ष की ओर झपटे। झट हिरण्याक्ष को गोद में उठा लिया और ऐसे ज़ोर से दबाया कि हिरण्याक्ष के प्राण तुरत निकल गये। इस प्रकार वराह भगवान् ने जगत् का दुःख छुड़ाया और इन्द्र आदि देवताओं को भी उन की अपनी अपनी जगहों पर फिर बैठा दिया। वे देवता फिर पहले ही की भांति उत्साह के साथ सब काम करने लगे।

नरसिंहावतार ।

हिरण्याक्ष के मर जाने के बाद उस का पुत्र "हिरण्य-कशिपु" बड़ा प्रतापी राजा हुआ। जब वह धनुष चढ़ाता था तब एक ही क्षण में सारे संसार का नाश कर देता था। बिना ऐसा किये कभी धनुष नहीं उतारता था। उस का प्रताप सिंह के समान था। वह कन्दरा के समान जगत् में शत्रुओं को नष्ट कर के सुख-पूर्वक सदा सोया करता था। वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु जम्भ, वृत्र, नमुचि आदि वीर दैत्यों के बीच राजसिंहासन पर बैठ कर राज्य का सब काम करता था। उस के पैरों पर बड़े बड़े बलशाली दैत्य सिर झुकाते थे। उस की दोनों ओर देवताओं की सुन्दर सुन्दर स्त्रियां खड़ी हो कर पंखा झलती थीं। उन देवियों के पति कैद किये गये थे या मार कर भगा दिये गये थे, इस कारण विरह से उन के मुंह से सदा "आह" के साथ ठंढी सांस निकला करती थी। उस के सामने कोई देवता युद्ध करने के लिये नहीं खड़े हो सकते थे। उस सभा में एक बूढ़ा दैत्य "राहु" भी बैठा था, जिस का सिर विष्णु ने अमृत पीने के समय काट लिया था। उस ने कहा हे "दैत्यराज हिरण्यकशिपु! आप धन्य हैं। आप के वंश में देवताओं का अपराध क्षमा करने के कारण जो कलङ्क लग गया था उस को आप ने अपनी तलवार की धार से मिटा दिया। देवताओं के किये हुए अपकार हम लोगों के हृदय में कांटों के

समान घुस गये थे, उन को आपने केवल अपनी भौंहें टेढ़ी कर के ही निकाल दिया। उस पवित्र यश वाले जीव का जीवन धन्य है, जिस की प्रतिष्ठा सुमेरु पर्वत के समान बढ़ती जाती है और जिस के होने से वंश की उन्नति होती है। देखिये, हम लोगों ने क्या अपराध किया था, जिस के बदले उन लोगों ने हम लोगों के मारने का उपाय किया था। विष्णु तो बड़ा ही दुष्ट है, जिस ने बिना अपराध ही चक्र से मेरा गला काट डाला। वह बड़ा ही छली है। वह स्त्री बन कर हम लोगों के पास आया था। उस समय उस की सुन्दरता बड़ी ही विचित्र थी। उस की वह फूल की कली सी पतली देह, वह मीठी बात, वह सुन्दर मुख, वह निर्दय हृदय, वह कामभरी चितवन और वह चतुरता अब तक नहीं भूलती। जिस समय वह अमृत चुराने के लिये स्त्री बना था, उस समय की उस की वह हृदयहारिणी शोभा आज तक नहीं भूलती। हम लोगों ने धोखा खाया। वह दुष्टता हम लोग कभी नहीं भूल सकते। आप को भी नहीं भूलना चाहिये, सदा याद रखना चाहिये। जो स्नेह या वैर को भूल जाता है वही संसार में निकम्मा है। उस की मित्रता और शत्रुता दोनों ही व्यर्थ हैं। याद रखिये। विष्णु ने दैत्यराज हिरण्याक्ष को मार कर दैत्य रूपी पहाड़ों के सब से ऊँचे शिखर को गिरा दिया है। समुद्र के मथने से निकली हुई लक्ष्मी को उस ने अपनी स्त्री बना लिया है। इस कार्य से उस ने हम लोगों को अच्छी तरह स्त्री सिद्ध कर दिया। वह अपने ही को पुरुष समझता है और हम लोगों को स्त्री ही समझता है। उस महा काठ विष्णु का लक्ष्मी, कौस्तुभ और पारि-

जात का हरण करना, स्त्री बन कर सब को ठगना, जिस समय मैं अमृत पी रहा था, वह अमृत मेरे गले से नीचे भी नहीं उतरा था, उसी समय चक्र से मेरा गला काटना, इत्यादि, दुष्टता की बातें क्या आप लोग भूल गये हैं? ऐ दैत्यराज! अब आप अपनी तलवार से विष्णु का गला काट कर मरे हुए पिता का श्रद्धा सहित श्राद्ध करें।" राहु की यह बात सुन कर दैत्य लोग गर्दन नीची कर के सोचने लगे। उन लोगों के मुंह का रंग फीका पड़ गया।

जब महाभिमानी दानव लोग निरादर से चुप हो गये, तब तारक ने राहु की ओर ताक कर कहा—जिन के पास गुण है और जो गुण से ऊंचे समझे जाते हैं, वे अभिमान के साथ असम्भव, अप्रिय और अनुचित बात कभी नहीं कहते और कभी दुःख तथा निरादर का भी वचन नहीं कहते। दैत्येन्द्र हिरण्याक्ष को काल ने मारा है। व्यर्थ ही विष्णु की प्रतिष्ठा करते हो। वह कभी नहीं मार सकता। क्या तुम काल की महिमा नहीं जानते? वही काल कल्प के अन्त में सुमेरु ऐसे महापर्वत को भी गिरा देता है। कौन उस को रोक सकता है? वह बड़ा बलवान् है। वह तीनों लोकों के स्वामी और सब प्रकार के आश्चर्यों के करनेवाले महातत्वों को भी नष्ट कर सकता है, जो कई करोड़ों वर्ष जी सकते हैं। काल के कामों में कोई बाधा पहुंचाने वाला नहीं है। सचमुच बात यही है कि उस अबध्य हिरण्याक्ष का बध करने वाला काल ही है। " विष्णु ने हिरण्याक्ष

को मारा" यह कौन विश्वास कर सकता है, और यह योग्य भी नहीं है। दैव की गति भी निराली है। क्या उस महावृक्ष को नन्हे नन्हे कीड़े नहीं गिराते, जिस में हज़ारों डालियों और करोड़ों पत्तियां है? "बलवान् दुर्बल को मारता है" यह बात निश्चित नहीं है। छोटा पतिंगा दीप को बुझा देता है और छोटी चींटी साँप को खा जाती है। कायर लड़ाई जीत जाता है और बली एक ही क्षण में मारा जाता है। भावी के वश ऐसे ही बहुत से कार्य होते हैं। तुम्हारे उकसाने की कोई ज़रूरत नहीं। मेरे प्रभु दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपने शत्रुओं को मारने के लिये किसी के विना कहे ही तैयार हैं। जंगलों में हाथी मारने के लिये सिंह को कौन उकसाता है? तुम ने शत्रु की निन्दा के बहाने शत्रु की प्रशंसा की है। तुम्हारे पास हृदय नहीं है, तुम मूर्ख हो, इसी से झट अनुचित बात कह उठते हो।

तारक ने अभिमानी स्वामी की झूठी प्रशंसा करने वाले दास के समान मुंहदेखी बात कही, जिसे सुनते ही सब दैत्य कह उठे "बहुत ठीक, बहुत ठीक"।

वहां दैत्यराज हिरण्यकशिपु का पुत्र परम धार्मिक प्रह्लाद युवराज बन कर अपने पिता के पास ही अपने आसन पर बैठा था। वह बोला "पिता! जहां बड़े २ गुणी और ज्ञानी वृद्ध बैठे हैं, वहाँ मेरे समान लघुबुद्धि-बालक का बोलना कैसे ठीक समझा जा सकता है! एक शास्त्रकार ने लिखा है कि जब भय का कोई कारण आनेवाला हो, तब उस कारण ही को हटा देना ठीक है।" यहां भगवान् की जो व्यर्थ ही निन्दा की जाती है

यह ठीक नहीं है। इस से पाप और अमङ्गल होगा। जिस की वाणी उन की निन्दा करने के लिये मुंह से निकलती है, उस की ऊसर खेत में बीज बोने वाले मनुष्य के समान निन्दा होती है। वे विष्णु सारे संसार में निवास करनेवाले हैं, उन का कोई शत्रु या मित्र नहीं है। वे दोष पर वैर और गुण पर प्रीति करनेवाले हैं। ज़रूर ही हम लोग गुणहीन हैं और देवता लोग गुणी हैं। नहीं तो, क्यों विष्णु हम लोगों से अप्रसन्न और देवताओं से प्रसन्न होते। जो बुद्धिमान् गुण इकट्ठा करने का यत्न करते हैं वे ही अपने मङ्गल के लिये उन के पैरों पर अपना सिर झुकाते हैं और ऐसे ही गुणी शत्रु भी उन के मित्र बन जाते हैं। शत्रु और मित्र कोई अलग अलग जाति नहीं है। हां, गुण से उन के मित्र और अवगुण से उन के शत्रु ही हो जाते हैं। जो कभी किसी के मारने की चेष्टा नहीं करता, जो सदा कोमल वचन बोलता है और जिस के मन में वैर नहीं है, उस का इस संसार में कोई शत्रु ही नहीं है।

वे विश्व के पैदा करने वाले हैं। इन्हें कोई नहीं मार सकता। उन के उदर के एक कोने में तीनों लोक (स्वर्ग, भूमि, पाताल) पड़े रहते हैं। जिस समय उन ने मत्स्यावतार धारण किया था, उस समय उन का शरीर बढ़ कर आकाश तक जा लगा था, उन के स्वास लेने से समुद्रों में बड़ी बड़ी तरंगें उठती थीं। उन के इधर उधर घूमने पर भी शरीर के धक्का से जल के ऊंचे ऊंचे पहाड़ बन जाते थे। उन भगवान को कौन जीत सकता है? जब उन की नाभी से कमल उत्पन्न हुआ और उस से ब्रह्मा उत्पन्न होकर सामवेद गाने लगे, तब ब्रह्मा कमल में बैठ कर

गुंजार करनेवाले भौंरे के समान जान पड़े। ब्रह्मा के गले में जनेऊ लटक रहा था। वह कमल की डंटी से निकले हुए सूत के समान शोभा देता था। भगवान् विष्णु की निन्दा या स्तुति कौन कर सकता है? उन के मुंह पीछे उन की निन्दा करना राहु को ज़रूर शोभा देता है, क्योंकि उन ने इस का गला काटा है। राहु का बैर करना ठीक है। उन के चक्र का घाव अब तक राहु के गले पर ज्यों का त्यों देख पड़ता है। किन्तु जिस समय विष्णु के चक्र की चोट से राहु बेहोश हो गया था, उस समय क्या राहु ने उन के शरीर के भीतर सारे जगत् को नहीं देखा था? तारक ने जो कहा है वह बहुत ठीक है। मेरे पिता को काल ही ने मारा है, दूसरे ने नहीं। सर्वव्यापक भगवान् विष्णु ही कालस्वरूप हैं। वे सदा रहनेवाले हैं; उन का आदि या अन्त कभी नहीं होता। वे करोड़ों कल्पों के बीत जाने पर भी नहीं मरते। विष्णु की प्रार्थना और पूजा कीजिये। अज्ञान और आग्रह छोड़ दीजिये। राजलक्ष्मी की रक्षा कीजिये और अपनी भलाई की बात सोचिये। जब मनुष्यों का भाग्य बिगड़ता है तभी वे मूर्खों को मन्त्री बनाते हैं, दुष्टों से मित्रता करते हैं, लाभ देनेवाली वस्तुओं से घृणा करते हैं, सब कामों में अचेत रहते हैं और भगवान् विष्णु से शत्रुता करते हैं।

प्रह्लाद की बात सुन कर हिरण्यकशिपु को बड़ा शोक हुआ। वह ऐसा दुःखी हुआ, जैसे बनैला हाथी अंकुश की चोट से दुःखी होता है। वह बोला "हा! अब दैत्यों के नाश के दिन आ गये! यह दुष्ट बालक ऐसा अज्ञान और अविवेकी हो गया है! यही

कुछ दिनों के बाद दैत्यों का राजा होगा। जहां बड़े बड़े बूढ़े बैठे हैं, वहां यह बालक उपदेश करे, यह कैसी बात है? जब कुल का नाश होनेवाला होता है, वा जब कुल की स्त्रियां व्यभिचारिणी हो जाती हैं, तभी ऐसे लड़के उत्पन्न होते हैं, जो अपने कुल की रीति छोड़ देते हैं, चंचल हो जाते हैं, मैले कुचैले रहते हैं और दुष्ट हो जाते हैं। वे कोयल के समान दूसरे के वंश की रक्षा करते हैं। यह राज्य तथा राज्यलक्ष्मी उसे अच्छी नहीं लगती। यह राजा होना नहीं चाहता, वरन विष्णु का दास बनना चाहता है। यह कैसी निन्दा की बात है? भाटों के समान, मेरे शत्रु की प्रशंसा करता है। इसे विष्णु की प्रशंसा करना बहुत पसंद होता है। जो दरिद्र हो जाते हैं और जो निर्बल होते हैं, उन्हीं की बात ऐसी दीनता से भरी रहती है। वे ही शत्रुओं से डर कर उस की प्रशंसा करते हैं। वे ही अग्नि के समान, अपने जन्मदाता ही का नाश करते हैं। जिस लकड़ी से आग पैदा होती है, उसी लकड़ी को जला कर वह खाक कर देती है। जो वृक्ष टेढ़े हो जाते हैं, वे ही अपना घर छोड़ देते हैं, उन्हीं की डालियां फैल कर बगल वाले बाग में फैल जाती हैं, उन के फल फूल भी दूसरे ही के बाग में गिरते हैं, वे फल दूसरे के ही काम में आते हैं। ऐसे पेड़ों से उस लगानेवाले को क्या फल हुआ, जिस ने उसे लगाया और सींचा? यही दशा कुपूतों की भी है। वे टेढ़े वृक्ष उन्हीं के पैरों पर गिरते हैं, जो कुल्हाड़ी लेकर उन्हें काटते हैं। यही हालत कुपुतों की भी है।

रे प्रह्लाद ! तू किस विष्णु की इतनी प्रशंसा करता है ? जिस ने मछली और कछुआ बन कर बड़े बड़े आश्चर्य के काम किये ? इस जगत् में एक से एक छोटे और एक से एक बड़े जीव उत्पन्न होते हैं; यह कोई अचंभे की बात नहीं। देखो ! ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है और परमाणु कितना छोटा है ! समुद्रों में उतर कर पतले पतले बादल पानी पीते हैं फिर पानी पी कर आकाश में बिना सहारे ही फैले रहते हैं। उन के पेट में पानी भरा रहता है, तौभी वहां कैसी बिजली चमकती है ! देखो, यह कैसी विचित्र बात है ! जहां शत्रुओं का नाश करने वाला "वृत्र" है, जहां सदा समरविजयी "मधु" है, जहां परमतेजस्वी "सुम्भ" है, जहां बड़ी माया जानने वाला "मय" है, जहां समुद्रों के समान बड़े बड़े रणों का पार कर जाने वाला "तारक" है, जहां सारे संसार को चकित कर देने वाला "जम्भ" है, जहां आकाश को भी घेर लेने वाला "शम्बर" है, और जहां परमप्रतापी "वातापी" है, वहां बेचारा विष्णु क्या कर सकता है ? किस मूर्ख गुरु ने तुम्हें उपदेश दिया है ? जिस का देवता जल में सोनेवाला महाजड़ विष्णु है, उस की बात पर तू ध्यान देता है ?

मैं बहुत सोच विचार कर देखता हूं तो विष्णु में कोई गुण नहीं है। वह केवल बाहरी ठाटबाट रखने वाला है। आंख मूद कर ध्यान करना, भौंहें टेढ़ी करके हंसना, ज़ोर से सांस लेना, शिष्यों की चाह दुगुनी बढ़ाना, मूर्खों को डरा देना, बहुत ऊंचे आसन पर बैठना, और बड़े हाव भाव से

ज़मीन पर पैर रखना, ये सब काम धूर्तों के हैं। वे इन्हीं कामों से दूसरों को फंसाते हैं। यदि वह सर्वव्यापी, सर्वात्मा और सर्वान्तर्यामी है, तो वह सब के हृदय में निवास करता होगा, चाहे सजीव में, चाहे निर्जीव में, वह सब जगह सदा रहता होगा। रे मूर्ख बालक! मेरी सभा में यह जो मेरे सामने मरकत मणि का खम्भा है, उस में तो तुम्हारे भगवान् की परछाईं भी नहीं देख पड़ती। तू बड़ा झूठा है और तेरा देवता भी झूठा ही है।"

इतनी बात के कहते ही उसी खम्भे को फाड़ कर उस के भीतर से नरसिंह भगवान् तुरत निकल आये, जिन का आधा रूप मनुष्य सा और आधा रूप सिंह सा था। उन के दोनों कान सोने की सीप के समान चमक रहे थे। मालूम पड़ता था कि उन के हृदय में रहनेवाले क्रोध की ये दो ज्वालायें हैं। उन की गरदन के ऊपर सफेद बालों का समूह था, जो सुमेरु की चोटी पर रहनेवाले श्वेतमेघों की ढेरी के समान जान पड़ता था। जमुहाई लेने के समय उन की जीभ लपलपाती थी। जान पड़ता था कि वह प्रलयकाल की अग्नि की लहर है, जो सुमेरु पर्वत की कन्दरा में लगी है। उन के नख चन्द्रमा की स्वच्छ कला के समान चमकते थे, मानो वे दैत्यों का खून पीने के लिये चांदी के कटोरे (प्याले) थे। उन के समूचे शरीर के रोएं खड़े हो रहे थे, जो क्रूरता और कठोरता के प्रत्यक्ष स्वरूप थे। बारहों कलाओं के साथ उगे हुए सूर्य के समान उन की देह की चमक थी, जिस के तेज से सारे संसार का अंधेरा नष्ट हो रहा था। उस नरसिंह भगवान के सिंह के समान मुंह को देख कर, हाथियों के समान

मतवाले दैत्य डर गये, उन का उत्साह नष्ट हो गया और अहंकार तो न जानें कहां चला गया। मानो उन के पास अहंकार था ही नहीं।

भगवान् का वह विचित्र रूप देख कर हिरण्यकशिपु कुछ डर गया। उस के मन में कई प्रकार की शंकाएं उत्पन्न होने लगीं। वह तुरत अपने राजसिंहासन से उठ खड़ा हुआ। फिर सोचने लगा, "एँ! यह कौन है?, यह न तो मनुष्य ही है, न सिंह ही है। इस को छोड़ देना ठीक नहीं। पकड़ो, तुरत पकड़ो। अच्छा ठहरो, मैं ही इसे पकड़ूंगा।" ऐसा कह कर वह दैत्य नरसिंह भगवान् पर बाणों की वर्षा करने लगा। भगवान् ने थोड़ी देर तक आंखें मूंद कर उन बाणों को सह लिया, किन्तु थोड़ी ही देर के बाद उस दैत्यराज को पकड़ लिया। वह बहुत ही उछल कूद मचाने लगा। भगवान् पलोथी लगा कर बैठ गये और हिरण्यकशिपु को पकड़ कर उतान कर के अपनी गोद में लिटा दिया। फिर क्रोधभरी लाल लाल आंखों से उस की ओर देखने लगे। उन की आंखें देख सभी डर गये। उस समय उन की आंखें संध्या की धूप के समान बड़ी ही लाल लाल हो आई थीं।

भगवान् ने जब अपने उस भयानक रूप की परछाईं हिरण्यकशिपु की माला के रत्नों में देखी, तब उन्हें भी उस रूप पर बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी ही देर के बाद भगवान् ने अपना पंजा उस दैत्य की छाती पर बड़े ज़ोर से पटका, जिस से बहुत ही भयङ्कर शब्द हुआ और दोनों पंजे उस की छाती के भीतर घुस गये। उसी समय हिरण्यकशिपु का प्राण "ठहरो, ठहरो, कहां जाते हो," ऐसे ही शब्दों का उच्चारण करता हुआ शरीर से निकल गया।

पंजे की चोट से हिरण्यकशिपु की मोती की माला टूट गई थी। बहुत से मोती भगवान् के नखों में अटक गये थे, जो रक्त में भींज गये थे। उस समय उन के पंजे फटे हुए अनार के फल के समान जान पड़ते थे और वे मोती भी अनार के दानों के समान मालूम पड़ते थे।

हिरण्यकशिपु का मरना और भगवान् का पराक्रम देख, वृत्र मूर्ति सा अचल बन गया, तारक की टकटकी बंध गई, जम्भ खम्भे के समान गिर पड़ा, शंवर डर से आकाश में उड़ गया, वातापी तापयुक्त हो गया, कालनेमि का अहंकार नष्ट हो गया और विप्रचित्ति अचेत हो गया। हिरण्यकशिपु का मरना सुन कर इन्द्र ऐरावत को, सूर्य घोड़ों को, यम भैंसे को, चन्द्रमा हरिणों को, और गणेश चूहे को छोड़ कर भगवान् का दर्शन करने के लिये दौड़े। भगवान् ने सब देवताओं को दर्शन दिया और प्रह्लाद को चिरायु तथा धर्मात्मा होने के लिये आशीर्वाद दिया। फिर सब देवताओं को उन के अपने अपने पदों पर बैठा दिया। ये सब काम पूरा कर के फिर भगवान् अपनी प्राणप्यारी लक्ष्मी के पास क्षीरसमुद्र में चले आये।

बामनावतार ।

भगवान् ने अपने ही हाथों से तिलक देकर प्रल्हाद को दैत्यों का राजा बनाया। प्रह्लाद भी दैत्यों की भलाई के लिये धर्म के साथ राज्य करने लगा। उस के राज्य का प्रबंध बहुत ही अच्छा था। कुछ दिनों के बाद फिर दैत्य महाबली, महा पराक्रमी और महाभिमानी होने लगे। उन को शासन करना और उन के साथ रहना प्रह्लाद को अच्छा न लगा, इसलिये उस ने अपने पुत्र विरोचन को दैत्यों का राजा बना दिया और आप सन्तोष के साथ भगवान के चरणों में लवलीन होकर तप करने लगा। कुछ दिनों के बाद विरोचन भी उन दैत्यों का उपद्रव न सह सका, इसलिये उस ने भी अपने पुत्र " बलि " को राजा बना दिया और आप तप करने चला गया।

यदि राजा धर्मात्मा होता है, तो उस के विक्रम से सम्पत्ति होती है और सम्पत्ति से उदय होता है। ये दिनोंदिन हज़ारों गुना बढ़ते ही जाते हैं। बलि ने अपने पूरे पराक्रम से सारे संसार को जीत लिया। उस ने किसी याचक को कभी विमुख नहीं किया। भिक्षुकों को अन्न धन देने के लिये सदा हाथ फैलाया और शत्रुओं को बाण देने के लिये (उन पर बाण चलाने के लिये) हाथ फैलाया। उस में ऐसे ऐसे गुण थे, जो किसी में नहीं पाये जा सकते। जिस प्रकार बादलों को देख कर हंस भाग जाते हैं,

उसी प्रकार उस के शासन को देखते ही देवता लोग डर से भाग जाते थे। उस के अच्छे गुणों को देख कर वनवासी प्रसन्न हो कर उसी को देवता समझने लगे। वे देवताओं को कभी याद भी नहीं करते थे। वह सूर्य बन कर अपना प्रताप फैलाता था, चन्द्रमा बन कर अमृत की वर्षा करता था, अग्नि हो कर हविष्य ग्रहण करता था और पवन बन कर बहता था। इतना ही नहीं, वह स्वयं शेषनाग बन कर सारी पृथिवी का भार धारण करता था और ब्रह्मा बन कर जगत् की रचना करता था। इतना ही नहीं, देवताओं का सभी काम आप ही करता था। वह ऐसा प्रतापी था कि ब्रह्मा ने स्वयं जा कर अपने हाथों से उस के मस्तक पर माला पहराई थी, जिस से वह सूर्य के समान चमकता था और वह माला उस के सिर पर उस संध्या के समान शोभा पाती थी, जिस संध्या को सारा जगत प्रणाम करता है। यात्रा के समय उस के सिर पर सोने का छाता नाचता था, जिस में अनेक प्रकार के रत्न जड़े थे। जब वह नाचता था, तब उसी की चाल पर साठ हज़ार अप्सरायें भी नाच करती थीं और कई हज़ार गन्धर्व मनोहर गीत गाते थे। उस की सभा कमलिनी के समान थी, वहां वह राजहंस के समान शोभा पाता था। वह उस समय सातों लोकों का स्वामी था। बड़े बड़े दैत्येन्द्र उस की सेवा करते थे। तारक, त्रिशिरा, वृत्र, शम्बर, तुरगानन, विप्रचित्ति, द्रुम, सुन्द, सुबन्धु, वन्धु, अन्धक, वातापी, नमुचि, जम्भ, सुम्भ, शम्भु, जलोद्भव, मायावी, महिष, क्रौञ्च, कैटभ, मधु, टिलल, राहु और गजासुर, ये सब दैत्य उस की सभा के सभासद थे। उस की दोनों ओर

बड़े सुन्दर सुन्दर चवंर हिलाये जाते थे, जो चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ और चमकीले थे। उस के गले में रत्नों की मालाएं लटक रही थीं, जिन में सभासदों की परछाईं पड़ती थी। इस कारण वह "विश्वरूप" भगवान् के समान जान पड़ता था, जिन में सारे ब्रह्माण्ड का प्रतिविम्ब देख पड़ता है। वह मणियों के बाजूबन्द और कड़े पहनता था, जिन की चमक से सब दिशायें चमकती थीं। जान पड़ता था कि उस ने रत्नों से भरी पूरी एक दूसरी ही पृथिवी बना दी, जिस से उस के राज्य में कहीं दरिद्रता ही नहीं रही। उस के सिर पर सपेद पगड़ी रहा करती थी, जिस में हीरे, मोती आदि सपेद मूल्यवान रत्न जड़े थे। वह पगड़ी तीनों लोकों की "विजयलक्ष्मी" की आनन्दसहित मधुर हँसी के समान जान पड़ती थी। वज्रदन्त, उस का नकीब था, जो उस के आगे आगे चलता था और रास्ता दिखलाता था। उस के हाथ में सोने की छड़ी रहा करती थी, जिस की पीली किरणें चारों ओर फैलती थीं। वह सभा में जा खड़ा हुआ। सब लोग आपस में बातचीत कर रहे थे। उस ने अपनी अंगुली के इशारे से सब को चुप कर के दैत्यराज से विनय के साथ कहा "महाराज! जो आप के चरणों पर सिर झुकाते हैं और जिन के सिर पर आप के चमकीले नख वाले चरण पड़ते हैं, उन लोगों के घर में लक्ष्मी दौड़ी जा कर निवास करती है, वाह! जो देवियां तुम्हारा चवंर हिलाती हैं, उन के गहने कैसे मधुर झंकार कर रहे हैं! महाराज! एक बार इधर भी आंख फेरिये। देखिये, वे देवता लोग आप की सेवा करना चाहते हैं, जो आकर आप के दरवाज़े के बाहर खड़े

हैं। इन्द्र की गद्दी छिन जाने से देवता, सिद्ध, गन्धर्व, और किन्नर सभी अवलम्बहीन हो रहे हैं। एक वार इधर भी दयादृष्टि कीजिये, देखिये यह मातलि (इन्द्र का सारथी) आप के चरणों को प्रणाम करता है। मैं इसे रोक रहा था पर नारदजी ने रोकने नहीं दिया, इस लिये वह यहां तक पहुंच गया है। घोड़ों का अधिपति (घोड़ों का जमादार) हयग्रीव भी श्रीमान् से यह पूछना चाहता है कि "उच्चैःश्रवा" घोड़ा किस की सवारी में रखा जाय। और हाथियों का जमादार गजासुर यह निवेदन करता है कि ऐरावत हाथी दूसरे हाथियों के साथ रहना नहीं चाहता उन्हें मार पीट कर भगाना चाहता है, इस लिये कहां रखा जाय। श्री दैत्यगुरु शुक्राचार्य जी ने श्रीमान् के पास कहला भेजा है कि देवगुरु बृहस्पति को मेरे ही समान आसन पर बैठाना चाहिये और मेरे ही समान उन की प्रतिष्ठा भी होनी चाहिये" उन का सत्कार भी वैसा ही किया गया है। वे श्रीमान् को आशीर्वाद देने के लिये आये हैं, उन के लिये क्या आज्ञा है? श्रीमान् का परम कृपापात्र सेवक "राहु" श्रीमान् के उस मुख-कमल की ओर बहुत देर से ताक रहा है, जिस मुख में लक्ष्मी सदा निवास करती हैं। वह कुछ प्रार्थना करना चाहता है, उस के लिये क्या आज्ञा होती है?

उस प्रतिहारी ने महाराज बलि की ओर मुंह कर के इस प्रकार निवेदन किया। फिर उन प्रार्थियों की ओर मुंह कर के कहा " ऐ हयग्रीव और गजासुर, तुम दोनों जा कर अपने हाथी और घोड़े के गले में बंधी हुई घंटियों को खोल दो। उन की झनकार से

यहां बड़ा कोलाहल मच रहा है। ऐ गायक चित्रसेन ! तुम अपना मनोहर गान कुछ देर बंद करो, समय पाकर फिर गाना। हे सप्तर्षियो ! आशीर्वाद नहीं रोका जा सकता, इसलिये आप लोग शीघ्र आ कर महाराज को आशीर्वाद दें, क्योंकि परम प्रतिष्ठित दैत्य राहु श्रीमान् से कुछ निवेदन करना चाहता है। स्वर्गलोक, मनुष्यलोक, और पाताललोक के सब कार्य करने के लिये कई योग्य अधिकारी नियुक्त कर दिये गये हैं। अब वहां का काम वेही लोग किया करेंगे। हमारे महाराज निश्चिन्त हो कर समय बिताना चाहते हैं।" इस प्रकार आज्ञा देकर प्रतिहारी वज्रदन्त ने सब को चुप करा दिया।

इस के बाद दैत्यराज बलि ने तनिक सिर झुका कर बृहस्पति को प्रणाम किया। बृहस्पति ने आदर पा कर बड़े ही उत्साह से आशीर्वाद दिया। फिर महाराज बलि ने उन प्रार्थियों की ओर एकबार आंखें उठा कर उन्हें सुखी किया। जिन लोगों ने अपने अपने कामों के लिये निवेदन किया था उन्हें उचित आज्ञाएं भी दीं। फिर राहु की प्रार्थना सुनने के लिये उस ओर दयादृष्टि की। बलि के दोनों कानों में रत्नों के चमकीले कुण्डल लटक रहे थे और कुछ कुछ हिल भी रहे थे। जान पड़ता था कि राहु के डर से सूर्य और चन्द्र ही कांप रहे हैं। बलि की आज्ञा पाकर राहु बोलने लगा। यद्यपि उस का केवल मुख ही था, सारा शरीर नहीं था, तौभी उस के दांतों की चमक ऐसी फैल रही थी, जिस से जान पड़ता था कि उस का चमकीला सारा शरीर वर्त्तमान ही है। यह कोई न जान सका कि उस की

यह नहीं है। राहु ने कहा—बुड्ढे लोगों को बुढ़ापे से बहुत दुःख झेलने पड़ते हैं। उन का बहुत दिनों तक जीना ठीक नहीं है। किन्तु बहुत दिनों तक जीने में एक बहुत बड़ा आनन्द यह मिलता है कि उन को कई नई नई विचित्र बातें बहुत देखने में आती हैं। जिस दिन जगत् की रचना हुई उसी दिन हम लोगों का जन्म हुआ था। किन्तु आज तक हम लोगों ने कभी ऐसा विभव नहीं देखा था। आप के समान ऐश्वर्य आज तक किसी का नहीं देखा। आप के ऐश्वर्य की उपमा हो ही नहीं सकती। आप के समान लक्ष्मी, प्रताप, शक्ति, भुजबल, यश, या प्रतिष्ठा किसी की न हुई और न है, और होगी भी नहीं। सृष्टि के समय से लेकर आज तक, आप के समान नम्र, प्रेमी, दानी, धनी, धर्मात्मा, बलवान् और शास्त्रज्ञ कोई राजा हुआ ही नहीं। आप के गुण ही आप की शोभा बढ़ानेवाले हैं। मुकुट, कुण्डल और हार ये तो केवल राजचिन्ह मात्र हैं। आप का यश सातों लोकों में फैल गया है। लक्ष्मी आप के सम्पूर्ण राज्य में निवास करती है। आप के समान कोई नहीं अपने दासों पर कृपा रख सकता। आप का "भुवनेश" नाम बहुत ही ठीक है। ये दैत्य तो बड़े बड़े बली हैं, इस लिये उन लोगों पर आप की कृपा रहती है। लेकिन मैं तो बिना हाथ पैर का हूँ। मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूं और मुझ पर कैसे कृपा हो सकती है। मैं तो बैठे बैठे सदा आप की शुभ कामना किया करता हूं। मैं आप के बाप दादों ही के समय से भोजन वस्त्र पाता आता हूं। कभी कहीं मेरी रोक-टोक नहीं हुई। अब तो मैं बहुत ही बूढ़ा हो गया हूं। मेरे सब शरीर निर्बल

हो गये हैं, इस से मैं कोई काम नहीं कर सकता। आप जवान हैं। "मैं आप को कैसे प्रसन्न करूं" यह मुझे नहीं मालूम पड़ता। मैं बर्फ के समान हूं, आप धूप के समान हैं। मैं वीणा के समान हूं, आप नगाड़े के समान हैं। मैं बूढ़ा हूं और आप जवान हैं। इस लिये मेरे साथ आप का प्रेम कैसे हो सकता है? आप के भृत्यों ने मुझे किसी प्रकार सहारा देकर यहां तक पहुंचा दिया है। अब मैं बहुत ही असमर्थ हो गया हूं। जब आप लड़के थे, तब मैं आप को गोद में लेकर खेलाता था, किन्तु अब नहीं मालूम पड़ता कि आप को कैसे प्रसन्न करूं। जैसे भौंरे मीठी झनकार कर के फूलों में घुस जाते हैं और उन फूलों का रस पीते हैं, वैसे ही बोलने में चतुर मनुष्य राज्य में प्रवेश कर लेते हैं और खजानों के रुपये खूब खाते हैं। मेरे भाग्य ने मेरे शरीर को दो टुकड़ा कर के मेरी भलाई की है, किन्तु यदि आप मेरा शरीर फिर जोड़ देते तो वह आप की की हुई भलाई समझी जाती। पर यह बात आप ने नहीं की। आप इस समय इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम, सूर्य, चन्द्र, वायु और प्रजापति, इन सभी देवताओं का काम स्वयं कर रहे हैं। अच्छा, मेरे शरीर के नष्ट हो जाने से जो मुझे क्लेश हुआ उस की बात छोड़ दीजिये, पर जो बात मेरे लिये स्थिर हो चुकी है उस बात को आप अपनी विभूति के प्रभाव से क्यों नष्ट करते हैं? सुनिये, जब मैं अमृत पीने के लिए लालायित हो कर देवताओं की पांति में बैठ गया, और कुछ पी भी लिया उसी समय विष्णु ने मेरा गला काट लिया, तब मैं बड़ा दीन और दुखी हो गया। मेरी दीनता देख कर ब्रह्मा ने कहा "ऐ राहु! मैं जानता हूं

कि तुम अमृत अच्छी तरह नहीं पी सके हो, इस लिये बहुत दुखी हो। यह दुःख तुम्हें सूर्य और चन्द्र के कारण मिला है। अब हम तुम्हें यह आज्ञा देते हैं कि तुम कभी कभी सूर्य और चन्द्र को भोजन करोगे और उन के शरीर में लिपटे हुए अमृत को पीओगे। किन्तु वह भोजन अब मुझे मिलने की आशा नहीं है। कारण यह कि आप के डर से वे दोनों (चन्द्र और सूर्य) बाहर निकलते ही नहीं। मैं नहीं जानता कि कहां सूर्य है, और कहां चन्द्रमा है। मैं बहुत दिनों तक आप की सेवा करते करते थक गया। न अब मुझ से कोई नोकरी हो सकती, न अब मुझ से उद्योग ही हो सकता और अब मुझे विशेष लाभ की आशा भी नहीं है। अब मैं थोड़े ही लाभ से प्रसन्न हो जाऊँगा। इस लिये अब कृपा कर के यह आज्ञा दे दीजिये कि " वे दोनों निर्भय हो कर आकाश में घूमा करें; उन्हें कोई रोक टोक न करे। तब मैं समय पाकर अपना मतलब पूरा कर लूंगा।

यह सुन कर बलि अपनी नाक पर अंगुली रख कर नीची गर्दन कर के पृथिवी की ओर देखता हुआ कुछ देर तक सोचता रहा। फिर सिर उठा कर चारों ओर ताक कर कुछ मुस्कुराता हुआ बोला " ऐ बजूदन्त ! यद्यपि मैं ने चन्द्र और सूर्य को बाहर निकल कर घूमने के लिये मना कर दिया है, तौ भी वे लोग आज से निर्भय हो कर सदा आकाश में घूमा करें। यह आज्ञा सुन कर बजूदन्त ने सब दूतों से कह दिया। इसी समय शंख बजा, जिस से जान पड़ा कि अब महाराज के स्नान करने का समय हो गया।

शंखध्वनि सुन कर महाराज बलि खड़े हो गये। उन के आश्रित बड़े बड़े राजा लोग भी उन को प्रणाम कर के अपने अपने घर आये और राजा बलि स्नान कर के अमृत के समान स्वेत तथा स्वच्छ वस्त्र धारण कर उस पूजाघर में गये, जहां बैठ कर राजा सदा पूजा पाठ तथा दान पुण्य किया करते थे।

वहां बैठ कर बलि ने चारों वेदों के जाननेवाले ब्राह्मणों को बुला कर सोने के हज़ारों बड़े बड़े ढाके दान कर दिये, जो सुमेरु की चोटी के समान बड़े और चमकीले थे। हज़ारों घोड़े भी सोने के अगणित गहने पहना कर ब्राह्मणों को दान कर दिये, जिन के मुंह से इतने अधिक फेन गिरे जिन के गिरने से वहां की पृथिवी भीज गई। जिस समय हज़ारों हाथी दान करने के लिये राजा बलि के पास बुलाये गये, उस समय उन के घंटों से ऐसी घनघनाहट हुई कि जिस के शब्द से चारों दिशाएं गूँज उठीं। ब्राह्मण लोग रत्नों का बोझ बड़ी कठिनता से ढो सकते थे। तो भी किसी तरह ढोते चले जाते थे और खुशी से जो ही मिलता था उसी को प्रणाम करते चले जाते थे। जब वह दान करने की इच्छा करता था तब सुमेरु अपने सिर पर रत्नों की ढेर लेकर सामने आ खड़ा होता था। कैलास, अपनी चोटी पर हज़ारों कल्प-वृक्षों को लेकर हाजिर होता था। पृथिवी रत्नगर्भा हो कर, चिन्ता-मणि निधियों के लेकर और कामधेनु अमृत का समुद्र लेकर उस की सेवा करने के लिये हाजिर होती थी। कुछ दिनों के बाद जब दान लेते लेते सारी प्रजा धनी हो गई तब उस के द्वार पर कोई याचक ही नहीं आते थे। उस समय उसे बड़ी चिन्ता होती

थी। कारण यह कि राजा बलि को दान करने की आदत पड़ गई थी। जिस दिन कुछ दान नहीं करता था, उस दिन उस का चित्त उदास रहा करता था। जब वह दान नहीं करता था तब वह अपनी सम्पत्ति को ऊसर भूमि के समान व्यर्थ समझता था और चारों दिशा को दया भरी दृष्टि से देखा करता था, कि अब कोई दीन दुखी आजाय तो उसे कुछ दूं। उस ने सोचा कि मैं ने धन, अन्न, वस्त्र, रत्न, सुवर्ण आदि सभी चीज़ों का दान किया, अब यदि किसी याचक को प्राण दान दूं तो मेरा जन्म सफल हो।

अब शरत्काल का आगमन हुआ। आकाश निर्मल हो गया। चारों ओर स्वच्छता ही स्वच्छता दीख पड़ने लगी। जिस प्रकार "बलि" से पराजित देवता लोग इधर उधर भागे फिरते थे उसी प्रकार शरत्काल से पराजित होकर मयूर-गण इधर उधर जंगलों में भागे फिरते थे। सूर्य की तीखी ताप से नदियां सूख कर पतली हो गईं। उन का उत्साह कम हो गया, इस लिये उन की चाल भी धीमी पड़ गई। जैसे दैत्यों का ऐश्वर्य निर्मल हो कर चमकता था, वैसे ही निर्मल आकाश में रात के समय अगणित तारे चमकने लगे। जैसे वियोगिनी स्त्रियां पीली होकर पति के आगमन की आशा से फूल-शय्या बना कर दुःख से समय बिताती हैं, वैसे ही चारों दिशाएं लोकपाल लोगों के वियोग से दुःखी हो कर, कास के फूलों से सपेद हो कर समय बिताने लगीं और फूले हुए कमल और कुमुदों की सेज तैयार कर ऋतुपति का रास्ता देखने लगीं। रात को पहाड़ों की चोटियों पर चमकनेवाली

औषधियां चमकने लगीं। जान पड़ता था कि मेघों के नष्ट होने के समय बिजलियां पहाड़ों की चोटियों पर आ गिरी हैं। मेघों के राजा इन्द्र का राज्य नष्ट हो गया, इस लिये मेघों ने भी अपना धनुष उतार कर रख दिया। वे मेघ अपने राजा की हित-कामना से तप करने लगे, इसी लिये इस समय पतले हो गये। जिस प्रकार बलि के प्रताप से डर कर इन्द्र ने अपना धनुष उतार कर रख दिया, उसी प्रकार मेघों ने भी शरत्काल से डर कर अपना सतरंगा धनुष उतार कर रख दिया। उन दोनों के धनुष कहीं नहीं देख पड़ते थे। जैसे युवती विधवाओं के पातिव्रत धर्म की रक्षा बड़ी कठिनता से होती है और डर रहता है कि कहीं लम्पट युवक उन के धर्म भ्रष्ट न कर दें, वैसे ही जब तालावों के जल सूख गये और तोते तथा हरिण तालावों में घुस कर कमल तथा कुमुदों को खाने के लिये इधर उधर से आने लगे, तो उन कमल तथा कुमुद के खेतों की रखवाली करना कठिन हो गया। जैसे राजा बलि के दान तथा यश से सब दिशाएं प्रकाशित हो गईं, वैसे ही कास, कुमुद, हंस और चन्द्रमा से सब दिशाएं, पृथिवी, आकाश और नदियां चमकने लगीं। इसी समय बलवान् बलि राजा से पराजित सब देवता नारायण भगवान् की शरण में गये। कारण यह कि उन देवताओं की पूजा राजा बलि ने बन्द करा दी थी। जैसे शरद ऋतु के दिन मेघों के न रहने से तापयुक्त हो जाते हैं और धीरे धीरे क्षीण (छोटे) होते जाते हैं, केवल प्रकाश ही उन का सहारा रहता है, वैसे ही सब देवता अनादर से सन्तापयुक्त हो गये,

प्रतिष्ठा के नष्ट हो जाने से हलके समझे जाने लगे और उन का सहारा केवल आशा ही थी। उन लोगों ने वहां जा कर शेष-शायी भगवान् को देखा। वे शेषनाग को बिछौना बनाकर सुख से सोए हुए थे। शेष की फणाएं ऊपर उठी हुई थीं। जो क्षीर-समुद्र के फेन के समान स्वच्छ और चमकीली थीं। भगवान् का रूप जगत के कल्याण करनेवाले प्रातःकाल के समान मनोहर था। पीताम्बर से उन के शरीर की शोभा और भी बढ़ रही थी। उन के साथ में श्री लक्ष्मी जी विराजमान थीं।

इन्द्र आदि देवताओं ने भगवान् को प्रणाम किया। भगवान ने उन की ओर दयादृष्टि की, जिस से उन लोगों को बड़ी धीरता तथा बल प्राप्त हुआ। भगवान् उन लोगों की विपत्ति देख गरदन झुका कर सोचने लगे। सभी देवता स्वर्ग से निकाले गये थे और इधर उधर मारे फिरते थे, यह बात जान कर भगवान् को बड़ा क्लेश हुआ। इस लिये भगवान् ने उन लोगों की चिन्ता दूर करने की इच्छा से अमृतभरीवाणी कही। मैं जानता हूं कि स्वर्ग छोड़े आप लोगों के बहुत दिन बीत गये, इस लिये आप लोगों की शोभा नष्ट हो गई है और हृदय में शोकशूल उत्पन्न हो गया है। दैत्यों ने जो आप लोगों को विपत्ति दी है, उसे सह लेना ही अच्छा है। जो दुःख नहीं सहते, वे सुख कैसे पा सकते हैं? दुष्ट जन थोड़ा भी सुख पा कर अहंकार करते हैं और थोड़ा भी दुःख पा कर घबड़ा उठते हैं। किन्तु सज्जनों को सुख में अहंकार और दुःख में विषाद नहीं होता। क्योंकि दुर्जनों का हृदय क्षुद्र तथा सज्जनों का हृदय गंभीर होता है। अब

लक्ष्मी तुरत ही दुष्ट दैत्यों को छोड़ कर आप लोगों के पास आ जायगी। दुष्टों की सम्पत्ति और सज्जनों की विपत्ति बहुत दिनों तक नहीं ठहरतीं।

धन पा कर दान करना, बल पा कर क्षमा करना, दुःख पा कर दीनता न करना और छिपा कर उत्तम कार्य करना, ये सब महात्माओं के लक्षण हैं। स्वामी हो कर योग्यता से कार्य करना, गुण पा कर नम्र होना, आनन्द पा कर घमण्ड न करना, मंत्र (छिपी बात) को छिपाना, शास्त्र में प्रेम करना, धनी हो कर दानी होना, सज्जनों का आदर करना, दुष्टों से अलग रहना, पापों से डरना और दुःख के समय क्लेश का सहन करना, ये सब काम बड़े लोगों को कल्याण देने वाले हैं।

भगवान् की ये बातें सुन कर सब देवता बहुत प्रसन्न हुए। क्योंकि भगवान् की बातें उपदेशों से भरी हुई थीं। जिस प्रकार पिता के दुलारने से पुत्र का उत्साह बढ़ जाता है, उसी प्रकार भगवान का वचन सुन कर देवताओं का उत्साह बढ़ गया। उन देवताओं ने कहा " भगवन् ! आप के समान हम लोगों के शुभ-चिन्तक के रहने पर अपने कर्मों की विचित्रता के कारण हम लोग इतना दुःख पा रहे हैं। हम लोग बिना काम धंधे के चुप चाप मन मारे बैठे रहते हैं, जैसे शिशिरकाल (जाड़े के दिनों) में भौंरे बनों के किनारे में लुके छिपे पड़े रहते हैं। पूर्व जन्मों के पापों के कारण हम लोग आप की कमाई हुई सम्पत्ति भोग नहीं सकते। बलि की प्रबलता से तीनों लोकों में वे दैत्य कांटों के समान फैले हुए हैं और हम लोगों को दुख दे रहे हैं। यद्यपि आप इन तीनों

लोकों की रक्षा करते हैं, तोभी तीनों लोक राक्षसों से ही भरे रहते हैं। बलि ने उस अमरावती नगरी को छीन लिया है, जिस में बहुत ही सुन्दर नन्दनवन है। हम लोग अब उस में जाने तक नहीं पाते, किन्तु अब उस का ध्यान ही कर के सुखी हो जाते हैं। स्वर्ग की जितनी सुन्दरी स्त्रियां और अप्सरायें हैं, वे सभी अब वन में निवास करती हैं और वे नन्दनवन तथा अमरावती का ही ध्यान करती करती सो जाती हैं। उसी समय वे स्वप्न ही में अमरावती और नन्दनवन का सुख लूटती हैं। राहु जिस को शरीर भी नहीं है, वह बलि की रक्षा से निर्भय हो कर समूची सेना के आगे चलता है और हम लोगों को लड़ने के लिये लल-कारता है। बलि का प्रताप बढ़ गया है, इस लिये इन्द्र दब गये हैं। और अन्धक दैत्य लक्ष्मीवान हो गया है। तारक अहंकारी हो गया है। गजासुर तो मद से अन्धा हो रहा है और सदा देवताओं ही से लड़ने की तैयारी करता रहता है। उसे देख बिचारे देवगण पति गणेश लज्जित हो जाते हैं। "रुरु" नामक दैत्य की तो कुछ बात ही न पूछिये, उसे जब याद आता है कि नरसिंह भगवान ने हिरण्यकशिपु का पेट अपने नखों से फाड़ डाला, तब तो वह भगवान् नरसिंह को लड़ने के लिये ढूंढ़ने लगता है। बलि का पुत्र बाण भी तो एक विचित्र ही लड़का है। जान पड़ता है कि उसे हज़ारों हाथ हैं। उस ने कार्तिकेय के मोर को छीन कर अपना खिलौना बना लिया है। उस ने अग्नि के वाहन तोते को पकड़ कर एक सोने के पिंजरे में बन्द कर रखा है। और वरुण के वाहन हंसों को पकड़ कर अपने बगीचे वाली

पोखरी पर रख छोड़ा है। वह जब लड़ने के लिये रण में आवेगा तब शिवजी के दिये हुए अग्नि के समान बाणों से तीनों लोकों को एक ही पल में जला कर भस्म ही कर देगा। शम्बर जब आकाश में खड़ा हो कर लड़ने के लिये तैयार हो जाता है तब वह बिना भीत के चित्र के समान देख पड़ता है। उस की शक्ति शत्रुओं के हृदय में बर्छी हो कर लगती है। जैसे कृतघ्नों पर किये हुए उपकार और सज्जनों के क्रोध तुरत ही नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही उस को मारने के लिये किये हुए सभी उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। बलि के शासन में रहने वाले दैत्य आपस में कभी नहीं लड़ते। वहां हयग्रीव महिषासुर को हृदय में लगाता है। यद्यपि हय (घोड़े) तथा महिष (भैंसे) से शत्रुता रहती है, तथापि यहां दोनों (हयग्रीव और महिषासुर) में बड़ी मित्रता रहती है। आप की क्रोध भरी टेढ़ी भौंएं ही उन को दण्ड देने में समर्थ हैं। हम लोगों की भाग्यहीनता से वह भी आप भूल ही गये हैं। यदि आप उन पर तनिक भी क्रोध करते तो उन का अवश्य नाश हो जाता। आप केवल शेषनाग पर पड़े ही रहना पसन्द करते हैं। तभी आप जगत् की सुध लेंगे, जब इस का सभी प्रकार नाश हो जायगा।

जब देवताओं ने ऐसा कहा, तब भगवान् बहुत सोच विचार बोले। उन ने देवताओं से बता दिया कि क्यों देवताओं की सम्पत्ति नष्ट हुई और बलि की सम्पत्ति बढ़ी। यह भी उन ने बता दिया कि कैसे बलि के गुण संसार में इतने फैल गये। फिर भगवान ने कहा—बलि बड़ा धर्मात्मा और बलवान है, इस

से उस को मारना ठीक नहीं। और आप लोग भी इस समय बड़े कलेश में पड़ गये हैं। इन दोनों बातों को सोच कर मेरा मन चञ्चल हो रहा है। जहां तक मैं सोचता हूं बलि का कोई दोष नहीं देख पड़ता। हां, जो कुछ उस के राज्य में उपद्रव होते हैं वे उन दुष्ट दैत्यों के कारण। दुष्टों का संग कभी नहीं करना चाहिये। दुष्टों के सङ्ग से यश का नाश होता है, कलेश उत्पन्न होता है, दशा अच्छी नहीं रहती, सर्वसाधारण को उद्वेग होता है, लोग उस की हंसी करते हैं, बुद्धि चञ्चल हो जाती है, प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है, आयु चीण हो जाती है और सब प्रकार की भलाई की आशा जाती रहती है। बलि सब प्रकार धर्मात्मा है और बड़ा गुणी है, उसे मारना ठीक नहीं है। किन्तु आप लोगों की भलाई के लिये उस का विभव ही नष्ट कर दूंगा। मैं आप लोगों की भलाई के लिये सब कुछ कर सकता हूं। चाहे वह बुरा हो, चाहे भला। आप लोग अपने अपने घर जांय, किसी बात की चिन्ता न करें। मैं आप लोगों की भलाई के लिये पूरी चेष्टा करूंगा।

भगवान की यह बात सुन कर सब देवता चले गये। भगवान भी बैठे बैठे देवताओं की भलाई की चिन्ता करने लगे। इसी बीच नीति शास्त्र के परम विद्वान् शुक्राचार्य ने बलि के पास जा कर अकेले में बड़ी दया के साथ कहा—उचित विचार से चित्त की, सत्य वचन से मुख की, गुण से धन की और तुम से जगत की शोभा होता है। इस लोक में आज तक तुम्हारे समान किसी क सम्पत्ति न देखी गई, न सुनी गई। तुम्हारे पूर्वपुरुष तुम्हारे समान धर्मकार्य नहीं कर सकते थे और आगेवाले भी नही कर

सकेंगे। जैसे जङ्गली व्याधाओं को देख कर चमरी गायें भाग जाया करती हैं, वैसे ही गुणहीन पुरुषों को देख कर चञ्चला लक्ष्मी भाग जाती है। असावधानी से लक्ष्मी, शरत्काल से नदी, ग्रीष्म ऋतु के आने से रात और कृष्णपक्ष के आने से चांदनी क्षीण और नष्ट हो जाती है। नीति की बातें न सुनना, भलाई की बात हंसी में उड़ा देना, धूर्त्तों को साथ में रखना, चतुरों को हटा देना, दोषों का ग्रहण करना, गुणों को छोड़ देना, लक्ष्मी को व्यर्थ फेंकना, दूसरे के दोषों को ढूंढ़ना, सज्जनों का निरादर करना और दुर्जनों का आदर करना, ये सब अवनति के लक्षण हैं। यदि खूब सोच विचार कर बुरे भी काम किये जायं, तो कोई हानि नहीं होती और बिना विचारे अच्छे भी काम किये जायं, तो कुछ भलाई नहीं होती। यदि थोड़ा सा विष भी विधि से खाया जाय, तो शरीर की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु यदि चन्दन भी बिना विधि शरीर में लगाया जाय, तो शरीर में अनेक प्रकार की पीड़ाएं उत्पन्न होंगी। सब गुणों में ये ही दोनों गुण सब से उत्तम हैं। पर इन दोनों गुणों को तुम इतनी अधिकता से करते हो कि ये दोनों अवगुण हो गये हैं। अपने आश्रित जनों की रक्षा करना बहुत ही अच्छा है और दान करना लक्ष्मी की शोभा है। किन्तु तुम ने इन दोनों को इतना बढ़ा दिया है कि ये दोनों ही अब दोष बन गये। नौकरों और प्रजाओं पर दया करना ठीक है, किन्तु यदि ये दोनों दुष्ट हों, तो दया करना ठीक नहीं। कृष्णपक्ष को साथ रखते ही चन्द्रमा दिन दिन क्षीण होने लगता है। तुम्हारे उत्तम चरित्र के चित्र दिशाओं की भीति पर लिखे गये

हैं, किन्तु वे विप्र दुष्ट दैत्यों पर दया करने के कारण मैले हो गये हैं। धन पा कर बुरे कामों में खर्च न करना चाहिये, धीरता का त्याग करना उचित नहीं। यदि प्रतिष्ठित मनुष्य किसी से भीख मांगे तो बुरा है। प्रीति को भूल जाना ठीक नहीं। शरीर को दुख देना ठीक नहीं। नीति की रक्षा करनी चाहिये। कीर्त्ति पाने की चाह अच्छी है। अपनी जीविका के लिये विशेष हाय हाय करना ठीक नहीं। दुर्जनों की तरफ़दारी करना बहुत ही बुरा है। बहुत दान करने से भी लोग दरिद्र हो जाते हैं। तब याचक लोग अपना मनोरथ न पा कर उस के घर से लौट जाते हैं, यह कैसी लज्जा की बात है। इस से धर्म की बड़ी हानि होती है। जिस ने एक ही बार अपना सारा धन दान कर दिया, उस ने सब याचकों का अंश नष्ट कर दिया। अब वह उन लोगों को कहां से देगा। धर्म धन ही से होता है। काम भी धन ही से होता है। मन भी धन ही के अधीन रहता है। प्राण भी धन ही के अधीन हैं। धन ही रूप है, धन ही बल है, धन ही उच्चकुल है, धन ही नवीन यौवन है, धन ही रोगरहित जीवन है। जो धनी होते हैं वे बहुत उत्तम शृङ्गार करते हैं, इस से रूपवान मालूम होते हैं। उन के पास बहुत नौकर चाकर रहते हैं, इस से वे बलवान जान पड़ते हैं। वे याचकों को बहुत दान देते हैं, इस से वे प्रतिष्ठित मालूम पड़ते हैं। वे बड़े २ कुलों में अपने लड़के लड़कियों को व्याहते हैं, इस से वे बड़े कुलीन जान पड़ते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि धनी लोग वेष से रूप, दासों से बल, याचकों से प्रतिष्ठा और उच्च कुल के विवाहों से कुल मोल लेते हैं।

धनी लोग वैद्यों से अच्छी अच्छी दवाएं पाकर नीरोग हो जाते हैं। धनी यदि अन्धे होते हैं, तो नौकर लोग उन का हाथ पकड़ जहां चाहते हैं वहीं पहुंचा देते हैं। इस से आंखों वालों ही के समान उन को सुख मिलता है। धनी धन के द्वारा मरने पर भी पूजित होता है। धनी धन ही से बहुत धन देकर गुरु से ज्ञान भी प्राप्त करता है। यदि धनी लोग मर भी जाते हैं, तो उन के मरने में इतने उत्सव तथा ब्राह्मणभोजन और जाति तथा परजातिभोजन होते हैं, जिन से वे जीवित ही जान पड़ते हैं। और दरिद्र मनुष्य जीता भी है तो उस के घर दरिद्रता के कारण कोई नहीं आता, इस से वह मुर्दा ही बना हुआ रहता है। जो मनुष्य इस महा दुर्लभ धन की रक्षा करता है, वह कुल प्रतिष्ठा गुण, और चरित्र की रक्षा कर लेता है। धन से गुण मिलता है, पर गुण से धन नहीं मिल सकता। गुणी लोग धनी को घेरते हैं। पर धनी गुणी के पीछे २ कभी नहीं लगा फिरता। गुणी लोग धन पाने की आशा से राजाओं के पास जाकर बारम्बार जयजयकार मनाते हैं। यदि धन का सम्बन्ध न होता, तो कौन मालिक होता और कौन नौकर होता। धनी और दरिद्र दोनों के समान ही हाथ पैर पेट आदि सब शरीर होते हैं, किन्तु धनी मालिक बन जाता है और दरिद्र दास बन जाता है। यही धन की महिमा है। यद्यपि धनी लोग धन के मद से मतवाले बने फिरते हैं, तो भी सब लोग धन की आशा से भोर होते ही दौड़ कर सेवा करने के लिये उस के दरवाज़े पर पहुंच जाते हैं और अनेक प्रकार से उस की सेवा करते हैं। धन के नष्ट होने से

गुण भी नष्ट हो जाते हैं, गुणों के नष्ट होने से मान का नाश होता है। इन तीनों के नष्ट हो जाने से दूसरे की बात क्या है, अपनी ब्याही स्त्री भी बात नहीं पूछती। बहुत से लोगों के मन में दरिद्रता के कारण विराग उत्पन्न होता है। इस से वे जवानी में ही विरागी हो कर संन्यासी हो जाते हैं, किन्तु वे संन्यासी होकर भी धन ही कमाने की चेष्टा करते हैं। उन का ध्यान और जप धन ही के लिये होता है। जो लोग दरिद्र हो कर धन मांगने के लिय सदा हाथ उठाये फिरते हैं उन का मरजाना ही अच्छा है। जो नीच हैं, वे ठगी से धन माँगकर अपने जीवन की रक्षा करते हैं। किन्तु जो प्रतिष्ठित दरिद्रता के कारण चुप्पी साधे बैठे रहते हैं, उन साधु पुरुषों का जीना कठिन हो जाता है। हा! दरिद्र-मनुष्य धनियों की सदा स्तुति किया करता है, जो स्तुति धनियों को नहीं सुहाती। दरिद्र सदा अपनी दरिद्रता ही की बात कहा करता है, अपना फटा पुराना वस्त्र ही दिखलाया करता है और उस धनी के पीछे छाया के समान घूमता फिरता है, कभी आगे और कभी पीछे। इस बात से धनियों को असाध्य रोग के समान क्लेश होता है। इन कारणों से उचित है कि धनी मानी लोग अपने धन की रक्षा करें। राजा महाराजों को अपना धन प्राण के समान समझना चाहिये। तुम ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है, जिस में सभी धन दान कर देना चाहते हो। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि दान करने के समय तुम्हारा हाथ नहीं रुकता। यज्ञ में तो और भी छूट कर दान करोगे। चारों ओर असगुन देख पड़ते हैं, इस से जान पड़ता है कि अब दैत्यों की

लक्ष्मी उन्हें छोड़ कर चली जायगी। मैं ने तो तुम्हें सचेत करा दिया, आगे तुम्हारी इच्छा।

राजा बलि ने शुक्राचार्य की यह बात सुन कर धीरे से कहा—उस समय उस के दांतों की चमक चांदनी सी चारों ओर फैल गई। वह इस प्रकार कहने लगा—"भगवान्, आप का कहना बहुत ठीक है। इसी में भलाई की आशा है, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। आप का ऐसा कहना उचित भी है। साधारण बुद्धिमान ऐसा वचन कभी नहीं कह सकता। किन्तु मैं विवश हूं, जो दैत्य सुख शान्ति देने वाली मेरी भुजा की छाया के नीचे सुख से निवास करते हैं, उन को मैं पुत्र के समान प्यार करता हूं। उन के ऊपर जो मेरा पक्षपात है, वह कभी छूट नहीं सकता। वे मेरी पुरानी प्रजा हैं। उन्हें कैसे छोड़ूं? जो राजा अपने पुराने आश्रितों को छोड़ना चाहता है, वह पृथ्वी का भार है। उस भार को ढोने में पृथिवी लज्जित होती है। अपने परिवार के लोगों से शत्रुता करके या उन लोगों को दुःख देकर जो सम्पत्ति पैदा की जाती है उस सम्पत्ति से सब को उद्वेग होता है। वह किसी काम की नहीं। अपने आश्रितों की आशा नष्ट कर के जो शक्ति उत्पन्न होती है वह बड़ी होने पर भी बेंत की लता के समान व्यर्थ ही है। उस से किस का उपकार होता है? चन्दन के उस वृक्ष की प्रशंसा करनी चाहिये जिस की मीठी मोटी शाखाओं की छाया में बैठ कर हजारों सर्प अपनी ताप मिटा कर सुख से सोते हैं। यदि दान ही नहीं हुआ, तो धन का होना व्यर्थ है। ये धन किस काम आयंगे। यदि याचकों की आशा पूरी न हुई और वे निरु-

गुण भी नष्ट हो जाते हैं, गुणों के नष्ट होने से मान का नाश होता है। इन तीनों के नष्ट हो जाने से दूसरे की बात क्या है, अपनी ब्याही स्त्री भी बात नहीं पूछती। बहुत से लोगों के मन में दरिद्रता के कारण विराग उत्पन्न होता है। इस से वे जवानी में ही विरागी हो कर संन्यासी हो जाते हैं, किन्तु वे संन्यासी होकर भी धन ही कमाने की चेष्टा करते हैं। उन का ध्यान और जप धन ही के लिये होता है। जो लोग दरिद्र हो कर धन मांगने के लिय सदा हाथ उठाये फिरते हैं उन का मरजाना ही अच्छा है। जो नीच हैं, वे ठगी से धन माँगकर अपने जीवन की रक्षा करते हैं। किन्तु जो प्रतिष्ठित दरिद्रता के कारण चुप्पी साधे बैठे रहते हैं, उन साधु पुरुषों का जीना कठिन हो जाता है। हा! दरिद्र-मनुष्य धनियों की सदा स्तुति किया करता है, जो स्तुति धनियों को नहीं सुहाती। दरिद्र सदा अपनी दरिद्रता ही की बात कहा करता है, अपना फटा पुराना वस्त्र ही दिखलाया करता है और उस धनी के पीछे छाया के समान घूमता फिरता है, कभी आगे और कभी पीछे। इस बात से धनियों को असाध्य रोग के समान क्लेश होता है। इन कारणों से उचित है कि धनी मानी लोग अपने धन की रक्षा करें। राजा महाराजों को अपना धन प्राण के समान समझना चाहिये। तुम ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है, जिस में सभी धन दान कर देना चाहते हो। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि दान करने के समय तुम्हारा हाथ नहीं रुकता। यज्ञ में तो और भी छूट कर दान करोगे। चारों ओर असगुन देख पड़ते हैं, इस से जान पड़ता है कि अब दैत्यों की

लक्ष्मी उन्हें छोड़ कर चली जायगी। मैं ने तो तुम्हें सचेत करा दिया, आगे तुम्हारी इच्छा।

राजा बलि ने शुक्राचार्य की यह बात सुन कर धीरे से कहा—उस समय उस के दांतों की चमक चांदनी सी चारों ओर फैल गई। वह इस प्रकार कहने लगा—"भगवान्, आप का कहना बहुत ठीक है। इसी में भलाई की आशा है, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। आप का ऐसा कहना उचित भी है। साधारण बुद्धिमान ऐसा वचन कभी नहीं कह सकता। किन्तु मैं विवश हूं, जो दैत्य सुख शान्ति देने वाली मेरी भुजा की छाया के नीचे सुख से निवास करते हैं, उन को मैं पुत्र के समान प्यार करता हूं। उन के ऊपर जो मेरा पक्षपात है, वह कभी हट नहीं सकता। वे मेरी पुरानी प्रजा हैं। उन्हें कैसे छोड़ूं? जो राजा अपने पुराने आश्रितों को छोड़ना चाहता है, वह पृथ्वी का भार है। उस भार को ढोने में पृथिवी लज्जित होती है। अपने परिवार के लोगों से शत्रुता करके या उन लोगों को दुःख देकर जो सम्पत्ति पैदा की जाती है उस सम्पत्ति से सब को उद्वेग होता है। वह किसी काम की नहीं। अपने आश्रितों की आशा नष्ट कर के जो शक्ति उत्पन्न होती है वह बड़ी होने पर भी बेंत की लता के समान व्यर्थ ही है। उस से किस का उपकार होता है? चन्दन के उस वृक्ष की प्रशंसा करनी चाहिये जिस की मीठी मोटी शाखाओं की छाया में बैठ कर हजारों सर्प अपनी ताप मिटा कर सुख से सोते हैं। यदि दान ही नहीं हुआ, तो धन का होना व्यर्थ है। ये धन किस काम आयंगे। यदि याचकों की आशा पूरी न हुई और वे विमुख

होकर लौट गये, तो सभी धन व्यर्थ हैं। विधाता की आज्ञा से धन आता है और उसी की आज्ञा से चला जाता है। दान करने से या भोग करने से धन नहीं घटता। वरन उस से धन की रक्षा होती है। लोभी मनुष्य अपनी मूठी बांध कर बड़े यत्न से धन की रक्षा करते हैं। तोभी न मालूम वह धन छिपाछिपाया ही कैसे नष्ट हो जाता है। वह धन किस रास्ते चला जाता है। यह कोई नहीं जानता। बुद्धिमान् लोग इसीलिये धन की रक्षा करते हैं कि यह धन किसी दिन भी तो किसी दुखिया के दुख छुड़ाने में लग जायगा। यह धन बादल के समान थोड़ी ही देर में बढ़ जाता है और थोड़ी ही देर में नष्ट हो जाता है। इन दोनों की गति कौन जान सकता है। धन छिपाने से भी नष्ट होता है और प्रगट करने से भी नष्ट होता है। फैलाने से भी नष्ट होता है और इकट्ठा कर के रखने से भी नष्ट होता है। धन आप ही आप नष्ट हो जाता है और दूसरे लोगों से भी नष्ट किया जाता है। किन्तु दीन दुखियों को दिया हुआ धन कभी नष्ट नहीं होता। मिट्टी और पत्थर के समान सुवर्ण और रत्न हैं। सीप और हड्डी के समान मोती हैं, पर मूर्ख लोग इन्हीं को धन कहते हैं किन्तु जिस खजाने से सब दास, आश्रित, भाई, परिवार और मित्र को दान नहीं दिया जाता, वह खजाना भी व्यर्थ ही है।

बलि की यह बात सुन कर दैत्यगुरु शुक्राचार्य भावी बात के सोच से, सिर झुकाकर सोचने लगे।

इस के बाद दक्षप्रजापति के समान महादानी बलि, बहुत बड़ा अश्वमेधयज्ञ करने लगा। सातों ऋषियों के साथ सब प्रजापति

वहां चले आये। तब उस की सभा देवर्षियों से भरे हुए ब्रह्मलोक के समान शोभित होने लगी। उस महायज्ञ में बलि ने खूब दान किया। सभी याचक अयाची हो गये, फिर कोई याचक ही नहीं रहा। इस से वलि को बड़ी चिन्ता हुई। इसी समय विष्णु वामन का रूप धारण कर बलि को ठगने के लिये चले आये। वे दैत्यों को विजयी होने देना नहीं चाहते थे। वे कपट करने में भी बड़े चतुर थे। जो हो, इस जगत् में याचक होना बड़ा अधम कर्म है। याचक होते ही मनुष्य हलका हो जाता है। उस का कोई आदर नहीं करता। याचकता से कौन अधम नहीं बनता? वामन जी के वेष का हाल सुनिये। उन का रूप काला और लड़के के समान छोटा था। घुंघुराले बाल थे, हाथ में छड़ी थी, दोनों कलाइयों में सोने के कड़े थे, कानों में कुण्डल और सिर पर मुकुट था। गले में कांखासोती जनेऊ लटक रहा था, जो सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण करने के समय दांतों की चमक से झलक रहा था। ऐसे ही भगवान् वामन वलि के यज्ञभवन में आ पहुंचे।

राजा वलि के दरवान तो चाहते ही थे कि यदि कोई याचक आ जाय तो उस को महाराज के पास ले चलें। वे भगवान को देखते ही बहुत प्रसन्न हुए और उन्हों ने तुरत ही उन को राजा के पास पहुंचा दिया। भगवान वामन ने वलि को देखा कि वह अगणित मुनियों के साथ बैठ कर यज्ञ कर रहा है। बलि वामन को देख बहुत प्रसन्न हुआ। उस ने बड़े आदर तथा प्रेम से उन को बैठने के लिये सुवर्ण की एक ऊंची चौकी दिलवाई। वामन-सामवेद की ऋचा से वलि को आशीर्वाद देकर आसन पर बैठ

गये। थोड़ी देर ठहर कर वामन अपने दांतों की चमक से सारे संसार को प्रकाशित करते हुए बोले—" ऐ महाराज बलि! सुनिये, इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, दक्ष और मनु ने अनेक यज्ञ किये, पर आप के समान विचित्र यज्ञ किसी का नहीं हुआ। इस जगत् में आप धन्य हैं, आप का विभव और बल बहुत ही आश्चर्य करने वाला है। आप का बल समुद्र के समान अथाह है। यद्यपि आप ने रत्न, घोड़े, हाथी और सारी लक्ष्मी ही दान कर दी, तोभी आप का चित्त कभी नहीं विचलित हुआ। आप तीनों लोकों के स्वामी और अपने कुल के तिलक हैं। सर्वस्व दान में भी आप ने अपना हाथ नहीं रोका। सब दे देने पर भी आप के हृदय में कुछ शोक नहीं हुआ, और तनिक अहंकार भी नहीं हुआ। आप याचकों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हैं।"

अमृत के समान यह मधुर वचन सुनकर बलि बड़ा प्रसन्न हुआ। उस का हृदय गद्गद् हो गया। कारण यह कि वह याचकों को बहुत प्यार करता था। वह कहने लगा—हे पूज्य विप्र! आप की अवस्था थोड़ी है और शरीर भी छोटा है। पर आप की बुद्धि बहुत ही बड़ी है। आप का वचन सुननेवालों के कानों में मधु की धारा बरसा रहा है। आप का वचन सुन कर किस का मन आश्चर्य में नहीं डूब जायगा। आप का दर्शन आनन्द की वर्षा करता है, वचन कानों में अमृत की धारा ढाल रहा है और आप का स्नेह मेरे चित्त में चन्दन का लेप लगा कर शीतल कर रहा है। आप के गुण मेरे मन को दूसरी ओर से खींच कर अपनी ही ओर झुका रहे हैं। आप का समागम बड़े भाग्य से होता है। वह

समागम आज बड़े पुण्य से मुझे मिला है, इस से जगत में मेरी बड़ी कीर्त्ति होगी, ऐसी ही आशा है। आप बिना रोक टोक अपना मनोरथ प्रगट कीजिये। उसे सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मेरा सारा विभव और प्राण आप ही का है। मैं सब कुछ आप को देने के लिये तैयार हूं।

बलि की प्रेम भरी ऐसी प्रार्थना सुन कर वामन ने कहा— प्रीति रूपी सुधा से भरा आप का दर्शन ही पाकर मैं तृप्त हो गया। अब मैं आप से कुछ विशेष मांगना नहीं चाहता, किन्तु मैं आप की प्रार्थना व्यर्थ करना भी नहीं चाहता, इस लिये आप कृपा कर के मुझे तीन पैर पृथिवी ही दे दीजिये।

बलि, वामन की बात सुन कर आश्चर्य में पड़ गया। उस ने कहा "भगवन्! आप मांगने में संकोच क्यों करते हैं। इतनी तुच्छ वस्तु मांग कर आप मेरी अप्रतिष्ठा करते हैं। जब मुझ सा देने वाला और आप सा लेनेवाला है, तब मैं अपना सर्वस्व ही देना चाहता हूं, आप उदारता से स्वीकार कर लीजिये। आप के दर्शन से मैं बहुत ही आनन्दित हो रहा हूं, इस से मेरी यही अभिलाषा है कि आप को अपना सर्वस्व दे दूं। जब बहुत प्रार्थना करने पर भी वामन ने अधिक लेना न चाहा, तब बलि तीन पैर पृथिवी ही देने के लिये तैयार हो गया। जब बलि दान करने के लिये सोने की झारी से जल गिराने लगा और वामन ने दान लेने के लिये हाथ फैलाया, तब दैत्य-गुरु शुक्राचार्य ने कीड़ा बन कर और झारी की नाली में घुस कर जल का गिरना रोका। कारण यह कि, शुक्र जानते थे कि इसी दान

से बलि का सर्वस्व नष्ट होगा। वामन शुक्राचार्य की चतुराई समझ कर मुसुकुराने लगे। फिर उन ने बलि से कहा–जान पड़ता है कि झारी की नली में कोई कीड़ा या मिट्टी अटक गई है, इसी से जल नहीं गिरता। इस को कुश से खोद कर साफ कर देना चाहिये। ऐसा कह कर बामन ने कुश से खोद ही दिया, जिस से शुक्राचार्य की एक आंख फूट गई और काने हो गये। झारी से पानी निकल आया और वामन ने दान ले लिया। अब वामन लगे बढ़ने। वे ऐसे बढ़े कि एक पैर में सारे जगत् को नाप सकते थे। उन के पैर इस जगत रूपी महामण्डप के खम्भे के समान ऊंचे और बहुत बड़े जान पड़ते थे। तीनों लोक नापने की इच्छा से बामन ने अपना शरीर अत्यन्त ही बढ़ा दिया। जिस समय उन की देह बढ़ने लगी उस समय सूर्य उन के गले की माला में अटक कर उन की नाभी के पास लटकने लगा। तब सूर्य बामन की माला में लटके हुए माणिक के झुगनू के समान चमकने लगा। बामन का वह की चरण कमल ब्रह्मलोक में जा पहुंचा, जिस चरण कमल को सब देवता प्रणाम करते हैं। उस समय ब्रह्मा ने उस चरण को धोना चाहा, किन्तु उन के कमण्डलु में पानी ही नहीं था। यह देख ब्रह्मा बहुत घबड़ाये। उस समय ब्रह्मा का धर्म ही पिघल कर जल हो गया। उसी जल से ब्रह्मा ने उस पैर को धो दिया। धोते ही वामन के चरण कमलों से गङ्गा उत्पन्न हुई, जिन का जल बलि की कीर्ति के समान स्वच्छ था और जिस में अनेक प्रकार की लहरें उठ रही थीं। उस गङ्गा को देख बहुत लोगों ने यह समझा कि यह वामन भगवान के

चरणों के नखों की चमक ही चारों ओर फैल रही है और कितने लोगों ने गङ्गा को देख यह समझा कि त्रैलोक्यविजयी भगवान् वामन की यह स्वेत विजयपताका है। किसी ने समझा कि यह स्वर्गलक्ष्मी की हंसी है। एक ही पैर में उन ने सारी पृथिवी नाप ली। दूसरे पैर के लिये कोई स्थान ही न मिला। उस समय परम धार्मिक, तथा सच्ची प्रतिज्ञा पर स्थिर रहने वाले बलि ने तीनों लोकों का त्याग कर दिया। उस ने अपनी सत्यता ही से सारे जगत् का राज्य छोड़ दिया, क्योंकि वह सत्य तथा धर्म के पाश में जकड़ कर बांध दिया गया था। भगवान् वामन ने बलि को पाताल में रहने की आज्ञा दी। इस जगत् में उचित कर्म करने वाला एक बलि ही राजा हुआ। उसी के यश से सारा संसार चमक रहा है। जिस ने अपने दान से बचे हुए शरीर को भी दान कर दिया। यही तक नहीं, वह विचारा बांध कर पाताल में भेज दिया गया। भगवान् ने कहा—ऐ राजा बलि, तीनों लोकों में जो लोग बिना श्रद्धा के या दुनिये को दिखाने के लिये दान, पुण्य, यज्ञ, श्राद्ध, तथा जप करेंगे, उन सबों का फल तुम्हीं को मिलेगा। इन्हीं पुण्यों से तुम्हारा जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत होगा।

बलि का दान देख कर सारा जगत् आश्चर्य में डूब गया। उस की वीरता देख कर इन्द्र का साहस नष्ट हो गया। उस के सामने वामन भगवान् ने याचना करने के लिये हाथ पसारा, उस का राज्य सारा संसार ही था, उस का यश सातों समुद्रों को लांघ कर उस पार तक चला गया, किन्तु दुष्ट दैत्यों के सङ्ग से

बस के सभी विभव देखते ही देखते नष्ट हो गये। लक्ष्मी व्याध्रा के डर से भागी हुई हरिणी के समान घर से निकल जाने वाली है। सुख भी बन्दर से हिलाई हुई लता के पत्तों के समान चञ्चल है। और यह भवितव्यता प्रतिक्षण जीवों को नष्ट कर रही है।

इस प्रकार भगवान् ने लक्ष्मी को देवताओं के हवाले किया। और दैत्यों को बलि की भक्ति से वशीभूत हो कर भगवान ने पाताल में रह कर प्रति दिन दर्शन देने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार बस की कीर्त्ति भगवान् ने दुगुनी चौगुनी कर दी।

परशुरामावतार ।

जब परमधार्मिक बलि बांधा गया, तब दैत्यों का बल नष्ट हो गया। वे बिचारे इधर उधर घूमने लगे, तीनों लोकों में अनेक प्रकार के उत्सव होने लगे। इन्द्र ने " वृत्रासुर " को मारा, दुर्गा ने सुंभ और निसुंभ को मारा। अगस्त्य सारे संसार को दुखी करनेवाले वातापी को खा कर पचा गये । चामुण्डा ने चण्ड पराक्रम वाले " रूरू " को मार डाला, जिस के एक बूंद खून गिरने से उस के समान लाखों वीर पैदा हो जाते थे। कार्तिकेय ने तारक को मारा, शिव ने गजासुर को मारा और दूसरे दूसरे देवताओं ने दूसरे दूसरे राक्षसों को मारा। अब इन्द्र का राज्य निर्भय हो गया। कुछ दिनों के बाद वे दैत्य पृथिवी पर आकर मनुष्यों के घर उत्पन्न हुए। वे लोग जहां तहां अपने पराक्रम से राजा भी बन गये। पर वे बड़े ही पापी और प्रजाओं के दुःख देनेवाले हुए। उस समय उन का सर्वप्रधान महाराज " अर्जुन " था। वह कृतवीर्य का लड़का था। उसका जन्म "हैहयवंश" में हुआ था। वह बड़ा बलवान था। उस के हज़ारों हाथ थे। उस की वीरता की बात सुनिये। दशग्रीवरावण एक बार युद्ध करने की इच्छा से अर्जुन के पास गया। अर्जुन ने खेल ही में रावण को अपनी गदा से छू दिया। रावण मूर्च्छित हो कर गिर गया। अर्जुन ने पकड़ कर रावण को अपनी चारपाई में बांध दिया।

इसी समय भृगु के वंश में उत्पन्न होनेवाले जमदग्नि के पुत्र "परशुराम" का जन्म हुआ। वे बड़े बलवान थे। उन्हें सब लोग भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं। उन ने श्री शिवजी से धनुर्विद्या सीखी। शस्त्रों को फेंकना, खींचना, फैलाना, सिकोड़ना, चलाना, दूर का लक्ष्य वेधन करना इत्यादि बातें शिवजी ने सिखलाईं। वे शस्त्र और अस्त्र चलाने में बड़े चतुर हो गये। एक वार परशुराम जी ने बड़े भयङ्कर युद्ध में बड़े पराक्रम से तारकासुर को जीता। यह देख शिवजी उन को पुत्र से भी अधिक प्यार करने लगे, क्योंकि उन में ऐसे ही वीरोचित गुण थे। शिवजी ने प्रसन्न हो कर एक परशु (फरसा या कुल्हाड़ी) दिया, जिस की धार बड़ी तेज थी। उसी फरसे से शिवजी ने गजासुर के वज्र समान कठिन चमड़े को काटा था।

एक समय की बात है कि—वह राजा अर्जुन अपनी बहुत बड़ी सेना लेकर शिकार खेलने के लिये जंगल में गया। वहां उस ने बाघ, हाथी, हरिण आदि हज़ारों पशुओं को मारा। यह कैसे दुःख की बात है कि जिन राजाओं का हृदय दया से परिपूर्ण रहता है, वे भी जब बन में शिकार खेलने के लिये जाते हैं, तब बड़े ही निर्दय हो जाते हैं। अर्जुन बहुत बड़ी सेना लेकर बन में घूम रहा था, इसलिये वहां की भूमि घोड़ों की टाप से खुद कर ऊबड़ खाबड़ हो गई, हज़ारों हरिन और हाथी मारे गये, और तपस्वियों के तप करने में बड़ा विघ्न पड़ा। वह राजा जमदग्नि के आश्रम में जा पहुंचा। उस के पहुंचने से उस आश्रम, के सैकड़ों पेड़ टूट फूट गये, हज़ारों आश्रमनिवासी पशु मारे गये। अन्त में जब राजा

थक गया और उस के घोड़े भी थक गये, तब विश्राम करने की इच्छा से उस भूमि पर जा ठहरा, जहां सैकड़ों प्रकार के फूल खिले हुए थे। वहां जाकर भी राजा अर्जुन चुपचाप नहीं बैठा। उस ने वहां उन हरिणों को भी मारा, जो जगदग्नि ऋषि के बहुत प्यारे थे, जिन्हें होम से बचे हुए कुश, दूध, जल और अन्न देकर उस ऋषि ने पाला पोसा था। यद्यपि ऋषि के शिष्यों ने राजा को ऐसा करने से मना किया, तो भी उस ने कुछ कान नहीं दिया। अन्त में अर्जुन ने जमदग्नि ऋषि की उस गाय को भी छीन लिया, जिस के दूध से होम होता था। उस के साथ उस का एक बछवा भी था। जमदग्नि ने ऐसा करने से रोका, पर मदान्धराजा ने मुनि की एक बात भी नहीं सुनी। ऐसा होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि, कठोरता से कीर्त्ति, व्यसन (ऐयाशी) से धन, शत्रुता से विद्या, अहंकार से विनय, कोप से क्षमा और भय से धीरता नष्ट हो जाती है, किन्तु लोभ से सभी नष्ट हो जाते हैं। राजा अर्जुन की बुद्धि लोभ से नष्ट हो गई थी। उस ने मुनि की धेनु को लेही लिया। इस काम से उस की प्रसिद्ध कीर्त्ति में बड़ा धक्का लग गया। उसे सब धिक्कारने लगे। लोभ से किसी की प्रशंसा नहीं हो सकती। लोभ से अलग ही रहना चाहिये।

राजा इस प्रकार उपद्रव कर चला गया। जिस से मुनियों को बड़ा कष्ट हुआ। जब परशुराम जी आश्रम में लौटे, तब उन ने देखा कि सारा तपोवन नष्ट भ्रष्ट हो गया है। उस के वृक्ष तथा लताएं हाथी घोड़ों से कुचल दी गई हैं। उस के पालतू पशु मार डाले गये हैं। वह बन उस समय सूना हो रहा था। कहीं वेदपाठ, धर्म-

शास्त्र विचार, होम, या यज्ञ कुछ भी नहीं होता था। तपोधन निवासियों का मुंह उदासीनता से मलिन हो रहा था, चारों ओर शोक छा रहा था और सब लोगों ने दुःख से सिर नीचा कर लिया था। पूछने पर परशुराम जी ने जाना कि ये सब काम राजा अर्जुन के ही किये हुए हैं। उन को यह भी मालूम हुआ कि अर्जुन मेरे पिता जी की गाय भी बछड़े के साथ छीन कर लिये चला गया है। मेरे पिता के रोकने पर उस ने नहीं माना है। उस गाय के बिना पिता जी का होम आदि सब धर्म कर्म रुक गये हैं।

इन बातों को जान सुन कर परशुराम जी को बड़ा क्रोध हुआ। उन का शरीर क्रोध से कांपने लगा। जटा के बाल हिलने लगे। वे बड़े ज़ोर जोर से सांस लेने लगे। बस ! तुरत ही उस फरसे को लेकर दौड़े, जिस की धार क्षत्रियों को नष्ट करने के लिये चमचमा रही थी। वह अर्जुन की राजधानी में पहुंच गये। वहां सब घर सोने के बने हुए थे। उस में चारों ओर अर्जुन का चमकीला प्रताप फैल रहा था। परशुराम ने पहुंचते ही हज़ारों हाथों से सुशोभित राजा अर्जुन को लड़ने के लिये ललकारा। अर्जुन भी निकल पड़ा। दोनों में ऐसा महा भयङ्कर युद्ध हुआ, जिस से सारा संसार कांपने लगा। परशुराम बड़े क्रोध में थे, इसलिये बड़े वेग से फरसा चला रहे थे। उन का फरसा भी ऐसा तीखा था कि उन ने उसी फरसे से अर्जुन के हज़ारों हाथ कमल की डंटी के समान काट डाले। यद्यपि परशुराम जी ने उस महावीर अर्जुन के हज़ारों हाथ काट डाले, जिस से

उस की मृत्यु हो गई, तथापि उन के हृदय में जो दुखदायी क्रोध उत्पन्न हो गया था वह शान्त न हुआ। यद्यपि इन के दो ही हाथ थे, तो भी इन ने शत्रु के हजारों हाथ काट डाले। इन का जन्म पर्वत के समान बड़े बड़े बली राजाओं के ऊंचे शिखर के समान उँचे तथा बलवान मस्तकों के काटने ही के लिये हुआ था। फिर परशुराम घर लौट आये। कुछ दिनों के बाद सब राजा आपस में मिल कर पुराने क्रोध का बदला लेने की इच्छा से तपोवन में चले आये। उस समय परशुराम जी फल और लकड़ी लाने के लिये आश्रम के बाहर चले गये थे। तपोवन सूना पड़ गया था। उन पापी राजाओं ने परशुराम के पिता "जमदग्नि" ही को मार डाला। उन का शरीर रुधिर में लथ पथ हो कर जमीन पर पड़ गया। पापी राजा यह पाप कर्म कर के तपोवन से बाहर निकल गये।

जब परशुराम जी फल तथा लकड़ी ले कर लौटे, तब उन ने पिता के मृत शरीर को देखा। उन को बड़ा शोक हुआ। वे व्याकुल हो कर रोने लगे। उन्हें बड़ी लज्जा हुई, इसलिये उन ने क्षत्रियों के अथाह रुधिर के महासमुद्र में डूब जाना ही अच्छा समझा। वे फरसा, तीर और धनुष लेकर युद्ध करने के लिये निकले और अपने प्रबल पराक्रम से सब राजाओं को मार डाला तोभी उन का चित्त शान्त न हुआ। परशुराम ने रुधिर से भरे हुये युद्धरूपी तालाब में स्नान किया, कीर्त्ति रूपी धोती और चादर को धारण किया, क्रोध से उद्धार पाने के लिये सब क्षत्रियों के वंशों का नाश किया। इसी को उन ने दाहक्रिया समझी।

इस के वाद राजाओं के हज़ारों सिर काट डाले, जिन पर सुवर्ण के मुकुट विराजित थे। उन ने राजाओं के सिरों ही को पिण्ड समझा, मुकुटों के सुवर्ण तथा रत्नों को तिल समझा और अपने बाणों को कुश समझा, जिन के सहारे यह पिण्डदान किया गया। इस प्रकार उन ने अपने स्वर्गवासी पिता की आत्मा को श्राद्ध कर के तृप्त किया। पिता के वध से परशुराम जी को ऐसा क्रोध हुआ था कि उन ने इक्कीस वार सारी पृथिवी को क्षत्रियों से विहीन कर दिया। उन के पराक्रम का वर्णन कौन कर सकता है।

श्री रामावतार।

संसार सदा एक सा नहीं रहता। समय के प्रभाव से हेर फेर होता ही रहता है। एक बार सारी पृथिवी राक्षसों से भर गई। उन के कारण पृथिवी का भार बढ़ गया। राक्षसों के एक वंश का नाम "सालकटङ्कट या सालकटोत्कट" था। इसी वंश में एक लड़की उत्पन्न हुई जिस का नाम "पुष्पोत्कट" था। युवती होने पर भी उस का विवाह नहीं हुआ। एक दिन सांझ के समय वह सुमेरु पर्वत की अति सुहावनी चोटी पर टहलने के लिये गई, जहां के बन उपवन अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताओं से परम मनोहर जान पड़ते थे। वहां उस कन्या ने पुलस्त्य के पुत्र तपस्वी "विश्रवा" को देखा। उन्हें देखते ही वह प्रेम से विह्वल हो गई। मुनि विश्रवा का जब ध्यान टूटा, तब उन ने उस कन्या को देखा। मुनि भी उसे देख मोहित हो गये। दोनों में प्रेम हो गया। वह कन्या गर्भवती हो गई और इसी वन में रह कर मुनि की सेवा करने लगी। समय पाकर उसे तीन लड़के हुए तीनों के स्वभाव तीन प्रकार के हुए। उन के क्रमशः ये नाम हैः— रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण। समय पा कर जब वे जवान हुए, तब बड़ी कठिन तपस्या कर ने लगे। उन्हों ने ब्रह्मा को प्रसन्न कर त्रिलोकविजयी होने का वर पाया। रावण ने शिवजी की बड़ी पूजा की। उन के सामने हवनकुण्ड में अपने दसों सिर

काट कर हवन कर दिये। शिव जी के बरदान से वह रावन तीनों लोकों का उथल पुथल कर देनेवाला हुआ। कुम्भकर्ण ने भी बड़ा तप किया। जब ब्रह्मा ने प्रसन्न हो कर पूछा कि "तुम क्या चाहते हो ? " तो उस ने जल्दी में उलटा ही वर मांग लिया। उस को कहना चाहता था कि "मैं छः महीने जागूं और एक दिन सोऊं।" पर उस ने कहा "मैं छः महीने सोऊं और एक दिन जागूं और भोजन करूं। विभीषण ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर यह बरदान मांगा कि "मैं धर्मात्मा होऊं।" ब्रह्मा इस वर से बहुत प्रसन्न हुए। उन ने यह बरदान दिया कि "तुम धर्मात्मा और अमर होवो।"

रावण ने अपने सौतेले बड़े भाई कुवेर की लङ्का छीन ली, जिस, लङ्कापुरी के सब मकान सोने तथा रत्नों से बने थे। उस ने कुबेर का बहुत ही उत्तम विमान भी छीन लिया जिस का नाम 'पुष्पक' था। उस ने इसी प्रकार अपने पराक्रम से सारे संसार को जीत लिया। इस के बाद निर्भय हो कर मन बहलाने के लिये आकाश में इधर उधर घूमता फिरता था। सब देवता उस के डर से इधर उधर भागे फिरते थे। सूर्य और चन्द्रमा उसे देखते ही बादल की ओट में छिप जाते थे। पवन उस के सामने बहुत धीरे धीरे चला करते थे और मेघ बहुत धीरे धीरे गरजते थे। जब वह वनों में घूमने के लिये जाता था तब वृक्ष और लताएं तनिक भी नहीं हिलती थीं। नदी का जल रुक जाता था। पक्षी-गण चुप चाप पेड़ों पर बैठ जाते थे। विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, आदि सभी देव गण उस से डरते थे।

एक दिन रावण, आधीरात को कैलास की एक चोटी के बीच चन्द्रकान्तमणि की चट्टान पर सुख से सो रहा था। चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। चारों ओर से सुहावनी सुगन्ध आ रही थी। शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु का प्रचार हो रहा था, जिसके लगने से बड़ा आनन्द मिलता था। उस ने उसी रास्ते से जाती हुई एक परम सुन्दरी स्त्री को देखा। उस का मुंह कलङ्क-विहीन पूर्ण चन्द्रमा के समान चमक रहा था। जिस के अङ्ग अङ्ग से शोभा टपक रही थी। ऐसी सुन्दरता किसी ने न देखी थी, न सुनी थी। रावण उठ खड़ा हुआ और उसका हाथ पकड़ कर बोला "ऐ गजगामिनी ! तुम किस के पास जा रही हो वह कौनसा भाग्यवान पुरुष है। जो हो मैं तुम्हें न जाने दूंगा। कौन ऐसा मूर्ख है जो आगे आई हुई सुधा को छोड़ देगा ?" यह सुनकर उस स्त्री ने जवाब दिया—"तुम मुझ से बलात्कार मत करो। तुम मेरी लज्जा की रक्षा करो, और अपने कुल तथा लक्ष्मी को बचाओ। मेरा नाम "रम्भा" है। मैं तुम्हारे भतीजे नलकूबर की प्यारी स्त्री हूं, इसलिये तुम्हारी "पतोहू" हूं। इस कारण मैं तुम्हारी पुत्री के समान हू। किन्तु रावण ने उस की बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। और उसे दुख देकर अपना मनोरथ पूरा किया।

वह रोती हुई नलकूबर के पास पहंची और सब समाचार कहा। सुनकर नलकूबर बड़ा क्रोधित हुआ, और उस ने यह शाप दिया कि "रावण यदि आज से कभी किसी स्त्री के साथ बलात्कार करेगा, तो वह उसी समय मर जायगा।" शाप का

समाचार राक्षसों के द्वारा रावण सुन कर बड़ा दुखी हुआ और विमान पर चढ़कर अपनी लङ्कापुरी में चला आया। तथापि उसका दूसरे प्रकार का उपद्रव कम नहीं हुआ। रावण एक दिन आकाश में विहार कर रहा था उसी समय शिवजी के एक दूत ने आकर कहा "ऐ रावण," तू इस रास्ते से हट जा, अपने घर चला जा। यह राक्षसों के घूमने का स्थान नहीं है। तू नहीं जानता कि—" श्री महादेव जी श्री पार्वतीजी के साथ आकर यहां सदा खेल किया करते हैं। यहां भय से सूर्य भी रास्ता छोड़ कर किनारे से जाता है। पवन भी धीरे धीरे चलते हैं।" शिवजी के दूत की बात सुनकर रावण अंकुश से छेड़े हुए मतवाले हाथी के समान क्रोधित हुआ किन्तु शिवजी की प्रतिष्ठा के कारण कुछ न बोला। फिर विमान से उतर, अपने बीसों हाथ लगाकर कैलास को जड़ से उखाड़ कर उठा लिया और कंधे पर लेकर खड़ा हो गया। उस समय उस पर्वत पर रहने वाले सभी यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, और उनकी स्त्रियां घबड़ा उठीं। उनके भूषणों की झनकार से चारों दिशाएं गूंजने लगीं। श्री पार्वती महारानी भी डर से शिवजी के गले में लिपट गईं। तब शिवजी ने अपने पैर के अंगूठे से पर्वत को दबा दिया। उसका भार रावण न सह सका इस कारण "आह" कहकर पहाड़ को कंधे से उतार कर धीरे से रख दिया। यद्यपि उस ने बड़ी दुष्टता की तथापि शिवजी उस पर बहुत प्रसन्न हुए। क्योंकि उसी के कारण पार्वती जी डर से स्वयं जाकर शिवजी के गले में लिपट गईं। इस से शिवजी को बड़ा सुख मिला। शिवजी ने शाप के

बदले यह आशीर्वाद दिया कि—"तेरा नाम रावण प्रसिद्ध होगा। तेरे शत्रु सदा रोवेंगे।" वर पाकर रावण पुष्पक विमान पर चढ़कर सुमेरु पर्वत के "रत्नशैल" नामक शिखर पर चला गया। वहां जाकर विहार करने लगा। वहां की रत्नमयी पृथिवी देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। वहां कई झरने झर रहे थे जिस के प्रवाह से कोमल ध्वनि निकल रही थी। वह ध्वनि कन्दराओं में टकरा कर दुगुनी हो जाया करती थी। वह, पर्वत की शोभा देखता हुआ टहलता चला जाता था। उस पर्वत की एक ऊंची चोटी पर उस ने एक कन्या को देखा जो वहां बैठ कर तपस्या कर रही थी। उस कन्या ने काला मृगचर्म ओढ़ लिया था जिस से वह हजारों भौंरो से घिरी हुई लता के समान शोभित हो रही थी। उस ने रावण का बड़ा आदर सत्कार किया। रावण ने पूछा—तुम कौन हो। क्या कामदेव की वियोगिनी स्त्री रति हो। जैसे अहंकार से विद्या, कपट से मित्रता, और लोभ से लक्ष्मी की शोभा नष्ट हो जाती है वैसे ही तुम्हारी शोभा नष्ट हो गई है। तुम्हारा ध्यान करना अनादर सा जान पड़ता है, रुद्राक्ष की माला पहरना तुम्हारे लिये लज्जा की बात है। इस युवा-वस्था में तुम्हारा वन में रहना कामदेव के शाप सा जान पड़ता है। हठ छोड़ कर तुम्हीं कहो। चुम्बन के योग्य इन ओठों से जप करना पाप पैदा करना है या नहीं? मैं कहता हूं कि—तुम आंखों में काजल लगा लो, जटा खोल कर चोटी गूथ लो, और पैर में महावर लगा लो। अब तप करके इस

दुर्लभ तथा सुन्दर शरीर को नष्ट मत करो। मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूं। यदि तुम तप करोगी तो तुम्हारी सुन्दरता किस के काम आवेगी।

रावण की बात सुनकर, उस के हृदय में, कोप, और दुख हुआ। उस ने कहा " सुनिये, व्रत में विवाद, विचार में नीचता, सत्य में शङ्का, विनय में विकार, गुण में अनादर, अच्छे कार्यों में रोक, टोक करना, और धर्म में विरोधना सज्जनों का काम नहीं। मैं बृहस्पति के पुत्र "कच" के वेदपाठ से उत्पन्न हुई पुत्री हूं। मेरी पिता की यही इच्छा थी— "मेरी लड़की का विवाह भगावन् विष्णु से हो।" कुछ दिनों के बाद मेरे पिता को दैत्यों ने मारडाला। मेरी माता, पति के शोक से चिता में जलकर भस्म हो गई। तब से मैं विष्णु को ही पति बनाने की इच्छा से तप कर रही हूं।

यह वचन सुनकर भी दशानन ने सुख की चाह से उस को बलात्कार अपनी छाती से लगा लिया। उस ने कई वार मना किया पर रावण अपना हठ नहीं छोड़ता था, इस से उस को बड़ा क्रोध हुआ। यद्यपि रावण ने, नलकुबर का शाप याद कर उस के साथ बलात्कार नहीं किया तौभी वह उसे बहुत दुख देकर वहां ले गया। उस कन्या को रावण के छूने से बहुत शोक हुआ, और क्रोध भी हुआ। वह "मेरे पति विष्णु हीं हों" यही संकल्प कर के सुमेरु की चोटी से कूद कर मर गई। रावन वहां से आकर कुबेर के पास पहुंचा और उन का सब खजाना उठाकर ले आया। कुछ दिनों के बाद वह पुष्पक विमान

से बोला कि "तू मुझे फिर उसी पहाड़ की चोटी पर ले चल, जहां की भूमि बड़ी विचित्र है। मैं उसे फिर देखना चाहता हूं।" वह उसी जगह पर आया पर उस ने उस पर्वत को नहीं देखा। संसार का कोई पदार्थ सदा नहीं रह सकता। वहां उस ने एक बहुत बड़ा सुन्दर नगर देखा। जहां अनेक प्रकार के भवन बाजार तथा गलियां देख पड़ती थीं। इसे देख रावण को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस ने भी जगत की विचित्रता, तथा चञ्चलता पर बहुत विचार किया पर इस का ठीक ठीक पता नहीं लगा। तब रावण फिर लौट आया। कुछ दिनों के बाद जब रावण फिर गया, तब उस ने वहां एक बहुत बड़ा वन देखा जहां अनेक प्रकार के वृक्ष सोभित हो रहे थे। वहां अनेक प्रकार के भयंकर पशु भी थे जिन्हें देखते ही डर से रोएँ खड़े हो जाते थे। रावण ने काल की कुटिल गति देख काल को बारम्बार प्रणाम किया। उस ने सब से बड़ा काल ही को समझा। उस ने सोचा कि "यह काल पक्षि के समान उड़ता चला जा रहा है। यह कभी नहीं थकता इसलिये कभी बैठता भी नहीं। इस के लिये न दिन है, न रात है। इसे न कभी भूख लगती, न कभी नींद आती। यह प्रतिदिन नई नई रचनायें किया करता है। यह ऊंचे को नीचा, और नीचे को ऊंचा करता है। समीप को दूर, और दूर को समीप करता है। यह सटे को अलग और अलग को सटा देता है। शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु बना देता है। सदा नई नई बातें दिखलाना ही इस को बड़ा पसन्द होता है। काल, तू धन्य है। वह काल की विचित्र शक्ति देखकर चिन्ता में डूब-

गया। चिन्ता से सभी ढीले हो जाते हैं, वह भी ढीला हो गया। तो भी फिर लङ्का में आकर सुख विलास में ऐसा डूब गया कि वह काल की कुटिल गति की सभी बातें एकदम भूल गया। समय धीरे धीरे बीतने लगे। योंही एक युग बीत गया। फिर भी रावण उसी स्थान में जा पहुंचा। इस समय उस ने देखा कि वहां एक बहुत ही गहरा गढ़ा है। फिर लौट गया। कुछ दिनों के बाद फिर आकर उस ने देखा कि वहां ही अब एक बड़ाही सुहावना सरोवर है जिस में लाखों कमल खिल रहे हैं और जिस के दिव्य जल में सैंकड़ों मतवाले हाथी स्नान कर रहे हैं। कमलों की पीली धूल से जल भी पीला हो रहा है। जब हंस कमलों में धक्के देकर उन्हें हिला देते हैं और हजारों भौंरे उन कमलों से निकल कर उड़ने लगते हैं तब जान पड़ता है कि अभी रात हो गई, जिसे देख चकवा चकई चिल्लाने लगते हैं। उस सरोवर का जल बड़ा मीठा है, उस में बड़ी सुन्दर तरंगें उठ रही हैं, खिले हुए कमलों पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं, जल की सुगन्धि से मन प्रसन्न हो जाता है। वह पुण्यवानों के रहने योग्य स्थान है।

रावण उस स्थान को देख बड़ा प्रसन्न हुआ। वह सारी चिन्ता छोड़ शिवजी की पूजा करने लगा। अच्छे स्थानों में जाने से मनुष्य की बुद्धि भी अच्छी हो जाती है। वह रावण बड़ी सावधानी के साथ उस तालाब के एक किनारे बैठ कर स्फटिक-मणि की शिवमूर्ति बना कर स्वर्गीय कमलों के कोमल पुष्पों से भक्ति-पूर्वक शिव की पूजा करने लगा। उस ने इतने फूल चढ़ाये कि फूलों की ढेरी आकाश तक जा लगी। स्वर्गीय सुवर्ण कमलों

की ढेरी के बीच से एक बड़ी सुन्दरी कन्या निकल पड़ी जो ठीक ठीक लक्ष्मी ही के समान सुन्दरी थी। अब रावण उस कन्या को लेकर लङ्का में चला आया और कन्या को मन्दोदरी के हाथ सौंप दिया। उस की अत्यन्त विचित्र सुन्दरता देख मन्दोदरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसे गोद में लेकर खेलाने लगी।

एक दिन नारद जी वहां आ पहुंचे। उन ने मन्दोदरी से कहा "ऐ मन्दोदरी, क्या तू नहीं जानती कि तेरा पति बड़ा चंचल है। जब यह कन्या युवती होगी तब रावण इस से सम्बन्ध करना चाहेगा।" मंदोदरी ने यह बात सुनते ही उस कन्या को रेशमी कपड़े से लपेट कर सोने की पिटारी में बन्द कर के समुद्र के उस पार एक खेत में गड़वा दिया। कुछ दिनों के बाद जब राजा जनक यज्ञ करने के लिये सोने के हल से वही भूमि जोतने लगे जहां वह बालिका गाड़ी गई थी तब उसी भूमि से एक बड़ी सुन्दरी कन्या निकली जिस का नाम जनक ने "सीता" रखा और अपने घर में लाकर उस का पालन पोषण किया। वे उस को पुत्री से भी अधिक प्यार करते थे।

एक दिन की बात है कि रावण की बहिन सूर्पनखा, रोती हुई रावण के पास आई। उस के दोनों कान और नाक कटी हुई थी जिन से रुधिर की धारा बह रही थी। उस ने रावण से कहा—रे रावण तुझे तीनों लोक जीतने का बड़ा अहंकार हो गया है। तू नहीं जानता कि तेरा एक नया शत्रु अब उत्पन्न हुआ है? तू अपने बल के ही घमंड से चिन्ता रहित हो कर सदा सोया करता है। जिस प्रकार लम्पटों के बीच में रहनेवाली स्त्री धर्म छोड़

देती है, उसी प्रकार तेरी लक्ष्मी भी तुझे छोड़ कर चली जायगी।

मेरी बात ध्यान देकर सुन। वह दशरथ का लड़का अपने पिता की आज्ञा से जटा वल्कल धारण कर और तीर धनुष के साथ सज धज कर अपनी परम सुन्दरी स्त्री सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन में आया है। उस स्त्री की सुन्दरता, देवियों तथा सिद्ध, साध्य, गन्धर्व किन्नर, विद्याधर, नाग आदि की स्त्रियों से भी बढ़ कर है। वह तेरे ही राज भवन में रहने के योग्य है। उसे मैं ने अपनी आंखों देखा है। उस की सुन्दरता देख मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। तू उसे कामदेव की जीत की प्रमाण पत्रिका ही समझ। मैं तेरे ही लिये उसे पकड़ कर लाना चाहती थी पर उस का भाई बड़ा दुष्ट है उस ने मेरी नाक और कान काट लिये। मेरा दुख देख कर खरदूषण आदि तेरे भाई क्रोधित हो अपनी सेना लेकर लड़ने के लिये गये थे। राम ने सब को मारडाला है और तू निश्चिन्त बैठा है। तुझे इस की कुछ भी खबर नहीं। देख काला भयंकर सांप भी यदि अपनी ताप बुझा ने के लिये बिल में जा कर सुख की नींद सो जायगा तो चींटियां उस के पेट में छेद कर के घुस जायंगी और उसे खा जायंगी। क्या तेरे पास गुप्त दूत नहीं है। तू ने तीनो जगत के राज्य का भार अपने सिर पर ले लिया है पर जिस को सारा संसार जानता है उसी दण्ड कारण की यह कथा तू नहीं जानता?

अपनी बहिन की बात सुनकर रावण को बड़ा दुःख हुआ। वह उस बात को नहीं सह सकता था। उस के मन में सीता की सुन्दरता सुन कर काम का बड़ा वेग हुआ। उसे काखने भी आ

घेरा। वह झटपट समुद्र के तीर मारीच के पास जा पहुंचा। मारीच रावण का मन्त्री था। उस समय वह वन में तप कर रहा था। उस से रावण ने सारी बातें कहीं। उस ने यह भी कहा कि "मैं जानकी को चुराना चाहता हूं।" मारीच ने कहा—"तुम अब नीति छोड़ना चाहते हो। तुम्हारे मन में अज्ञान आ गया है। यदि किसी धूर्त ने तुम से यह बात कही है तो वह तुम्हें विपत्ति में फंसाना चाहता है। किसी की स्त्री चुराना ठीक नहीं। इस से बड़ी बड़ी बुराइयां होती है, धर्म नष्ट होता है, क्लेश होता है, विपत्तियां आ घेरती हैं, लज्जा नष्ट हो जाती है, और पाप बढ़ता है। जब विनाश का समय आता है तब वह भली बातें नहीं सुनता, नहीं देखता, नहीं सूंघता, नहीं छूता और नहीं करता। जो चपल होते हैं उन की सभी इन्द्रियां आगेही दौड़ा करती हैं। जिस ने राक्षसों को बिना यत्न ही मार डाला ,उस राम की स्त्री को कैसे चुरा सकते हो? उन्हीं के डर से छिप कर मैं इस जगह तप कर रहा हूं। महात्मा ऋष्यशृङ्ग के होम किये हुए अग्नि से उनकी उत्पत्ति हुई है। उन ने पिता की आज्ञा से विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी। यद्यपि उस समय वे बालक थे तो भी बड़े वीर थे। उसी समय उन ने मेरी मा को मारडाला जिस से प्रसन्न हो कर विश्वामित्र ने "जम्भक" आदि अनेक अस्त्र, मन्त्र सहित उन को दिये। उस समय विश्वामित्र के यज्ञ में उन ने मुझे ऐसा एक कठोर बाण मारा कि मैं सौ योजन पर आ गिरा और मूर्छित हो गया। अब मैं "रा" शब्द से बहुत डरता हूं रथ, रवि, आराम, शब्द सुनकर डर जाता हूं। यहां तक कि तुम्हारा नाम

"रावण" सुन कर भी डरता हूं क्योंकि उस के आदि में भी "रा" शब्द है। वे जनकजी के "धनुषयज्ञ" में भी विश्वामित्र के साथ गये थे। उन में वहां शिवजी के महा कठोर धनुप को तोड़ कर "सीता" से व्याह कर लिया। धनुष तोड़ना क्या था, सारे संसार को जीतना था। वह धनुष किसी से नहीं टूट सकता था। सभी वीरों ने उस से हार मान ली थी। उस धनुप का टूटना सुन कर परशुराम क्रोधित होकर आये पर उन को भी राम के आगे हार माननी पड़ी। वे अपने पिता को सत्य के बंधन से छुड़ाने के वे इस निर्जन बन में तपस्वी होकर अपनी स्त्री और भाई के सहित आये हैं। उन के छोटे भाई भरत ने राज्य लेने के लिये बहुत आग्रह किया तो भी उन ने राज्य नहीं लिया। क्योंकि पिता दशरथ ने कैकेयी रानी के कहने से भरतही को राज्य दिया था, और इन को बन में जाने के लिये कहा था। जब राम ने राज्य नहीं लिया है तब भरत राम के खड़ाऊं को राज्यसिंहासन पर रख कर राज काज चला रहे हैं। उन के छोटे भाई शत्रुघ्न उनकी पूरी सहायता कर रहे हैं। यदि बुरे काम में मैं तुम्हारी सहायता करूंगा तो कैसे जीऊंगा। वे जरूर मुझे मारडालेंगे। यदि न सहायता करूंगा तो तुम्हीं मुझे मारोगे तो ऐसे प्राण संकट में रामही के हाथ से मरना ठीक है।

मारीच की बात सुनकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। मारीच को आगे भेज दिया, और पीछे से आप चला। मारीच तो माया जानता ही था। किन्तु रावण ने साधु का भेप बना लिया। रावण की मौत समीप आगई थी इसीलिये वह ऐसा पापकर्म

करने के लिये तैयार हो गया। सभी लोग उचित, अनुचित, जय, भय, विजय और पराजय जानते हैं, अपनी भलाई के लिये यत्न करते हैं और बुरे कामों से अलग रहते हैं किन्तु जब भाग्य विमुख हो जाता है तब सब बातों का जानकार मनुष्य भी विवश होकर क्लेश, शोक और विपत्ति के गढ़े में जा गिरता है, उसे कौन रोक सकता है। मारिच एक बहुत सुन्दर हरिण बन गया, जिस का सारा शरीर सोने का था, दोनों सींगे मूंगे की थीं। आंख आदि अंग मणियों के थे, उस के सारे शरीर से चमक निकल रही थी। वह सीताजी के पास ही आकर चरने लगा। सीता जी बड़े चाव से उसे देखने लगीं। उन ने उस का चाम लेने के लोभ से अपने पति से उसे मारने की प्रार्थना की। रामचन्द्र सीता के पास लक्ष्मण को बैठाकर आप तीरधनुष लिये उस हरिण के पीछे दौड़े। तुरतही राम ने एक तीखा बाण मारा, बाण लगते ही मारीच व्याकुल हो गया, मरने के समय उस ने करुणाभरे शब्दों में "हा लक्ष्मण, हा लक्ष्मण," कह कर पुकारा। वह शब्द सुनते ही सीताजी डर गईं, उन्हें पति पर विपत्ति पड़ने की शङ्का हो गई। उन का सारा शरीर कांपने लगा। उन ने लक्ष्मण को बहुत कह सुन कर रामजी के पास भेजा।

इसी अवसर में रावण भिखारी का रूप धारण कर आ पहुंचा। उस ने जानकी को देख यही समझा कि—सुर और दैत्यों के झगड़े के डर से किसी ने सुधा को ही निर्जन वन में लाकर रख

दिया। सीता ने भिक्षुक को देख कर प्रणाम किया और अनेक प्रकार से उस अतिथि का सत्कार करने के लिये तैयारी करने लगीं।

रावण ने कहा—तुम्हारे सारे शरीर में लुनाई झलक रही है, वचनों में मधुरता भर रही है, दोनों नेत्र बड़े ही तीखे हैं, उनके कोनों में कसैलापन बड़ाही भला जान पड़ता है, तुम्हारी मूर्त अमृत की बनी है और रस से भरी है, इस में कहीं खट्टे और कड़ुए का नाम भी नहीं है। तुम्हें मणियों के बने राजभवनों में रहना चाहिये, इस निर्जनबन में क्यों रहती हो। यह बन बड़ा ही भयंकर है, इस में बाघ सिंह आदि भयंकर जन्तु निवास करते हैं। जमीन भी ऊंची नीची है। रास्तों में पत्थरों और लकड़ियों के बड़े बड़े टुकड़े पड़े हैं और कुश जम आये हैं, यहां चलना कठिन है। यहां बड़े बड़े अजगर सर्प पड़े हैं जिनकी विष भरी सांस से बड़े बड़े पेड़ सूख जाते हैं। बनैले भैंसे लोट पोट कर के पानी को गदला बना देते हैं। तुम्हारे रहने योग्य लङ्का ही है जहां मणियों की बनी हुई बड़ी बड़ी अटारियां हैं, उस में स्फटिक के बने हुए ऊंचे ऊंचे घर स्वर्ग को हंसते हैं। वहाँ बड़ी सुहावनी अशोक-वाटिका है, जहां अनेक कल्पवृक्ष हैं जिनकी सुगन्ध से सारी लङ्का सुगन्धि रहती है। मैं सारे जगत् का जीतनेवाला और लङ्का का राजा रावण हूँ। मैं तुम को बहुत प्यार करना चाहता हूं। सब देवता लोग मेरे डर से झुक कर मुझे प्रणाम करते हैं।

सीता यह वचन सुन कर डर और क्रोध से कांपने लगीं। उन ने बड़े क्रोध से कहा—अरे, तू तो बड़ा कपटी साधु है। घासों

से ढके हुए गहरे अंधेरे कुएँ के समान है । तू पाप की बात कह रहा है क्या तेरी जीभ कट कर नहीं गिर जाती !

रावण मतवाला हो रहा था । उस ने सीता की बात सुनी अनसुनी कर दी । जैसे मतवाला हाथी हिलती हुई कदली को सूंड़ से उखाड़ कर उठा लेता है वैसे ही उस ने कांपती हुई सीता को हाथों से पकड़ कर उठा लिया । जानकी बड़े ज़ोर ज़ोर से विलाप करने लगीं । "कोई बचाओ, कोई बचाओ," कह कर चिल्लाने लगीं । यद्यपि रावण अपने को दयालु होने का घमंड करता था तोभी उसे दया नहीं आई । दया आवे कैसे ? जब मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये अन्धा हो जाता है तब दूसरे के दुख पर कुछ भी ध्यान नहीं देता । जैसे अंधड़ बड़े वेग से नई कोमल लताओं को उड़ा लेजाता है वैसे ही रावण जानकी को लिये आकाश मार्ग से जा रहा था । उस समय अरुण का पुत्र, परम दयालु जटायु दौड़ा । वह गीधों का राजा था । उस ने अपनी चोंच और पंजों से रावण का कवच फाड़ डाला, अस्त्र शस्त्र तोड़ डाले, और सिर का मुकुट गिरा दिया । किन्तु अन्त में रावण के हाथ मारा गया । उस ने अपने प्राणों को पराए की रक्षा के लिये युद्ध रूपी आग में जला दिया ।

इस जगत् में लाखों मनुष्य जनमते हैं पर उन में एक ही दो ऐसे धर्मात्मा होते हैं जो दूसरे की रक्षा के लिये अपने प्राण देते हैं । जो दुखियों की रक्षा के लिये अपने प्राण तृण के समान तुच्छ समझ कर त्याग कर देते हैं उन का यश कल्पान्त तक रह जाता है ।

लङ्का का राजा रावण जानकी को लेकर अशोकवाटिका में आ पहुंचा। वहां उस ने जानकी को, अपने कुल, प्रतिष्ठा और प्राणों का सर्वनाश करने के लिये रख दिया। कुछ दिनों के बाद राम का समाचार जानने के लिये उस ने अपने गुप्त दूत "सुकेतु" को भेजा। वह सब समाचार लेकर रावण के पास पहुंचा। उस ने कहा—अहो महाराज ! मैं क्या कहूं। दासता बड़ी कठिन है। जिस बात को राजा पसन्द न करे वह बात चाहे गुप्त हो, चाहे प्रगट हो, भला हो, चाहे बुरा हो, स्वामी के आगे कहना ठीक नहीं। स्वामियों की सेवा छूरे की धार के समान तीखी है। उस पर पैर रखना अपने को संकट में डालना है। देखी सुनी बात यदि सच्ची हो तो भी राजाओं को पसन्द नहीं आती। राजा लोग वेश्या के नकली प्रेम के समान झूठे ही वचनों से प्रसन्न होते हैं। जो सुनने में प्यारा मालूम पड़े उसी को राजा लोग सुनना चाहते हैं। जो हो। मैं ने जो देखा है, वही कहता हूं। मैं राम की बातें कहता हूं, जिन की सहायता करने वाला कोई नहीं है। जो राज्य से निकाल दिया गये हैं। और जो अपनी स्त्री के विरह से दुबले हो रहे हैं। वे राम जब परम मायावी मारीच को मार कर लौटने लगे तब लक्ष्मण को सामने देख डर गये कि सीता को कोई जरूर चुरा लेगा। उसी समय वे शोक से गिर पड़े। फिर जब आकर उन ने अपने आश्रम को सीता के बिना सूना देखा तब मूर्छित हो गये। होश होने पर भी उन का सिर चक्कर खाने लगा। उन की व्याकुलता का कुछ ठिकाना ही नहीं था। उन ने घूमते घूमते आकर जटायु को देखा जिस के प्राण

निकल रहे थे। उस से सीता का समाचार पाकर बड़े दुःखी हुए। अन्त में उन ने जटायु की दाह क्रिया की। एक तो सीता की वियोग था ही दूसरा जटायु की मरना भी कटे पर लोन के समान दुखदायी हुआ। उन ने हरएक पहाड़, वन हरएक कुञ्ज, और हर-एक तालावों में जाकर ढूंढ़ा। जान पड़ता था कि—सीता क्या भूलगई, उनकी धीरता ही भूलगई। वे वार वार शोक से आंसू बहाते फिरते थे। इतना करने पर भी उसे जानकी नहीं मिली। जिस प्रकार चकवा अपनी चकई के विरह में रात बिताता है उसी प्रकार वे भी सारे सुख से विमुख हो कर अपना समय बिताते थे। जैसे चन्द्रमा कमलवन से सदा विमुख रहता है वैसे ही उन का चन्द्रमा के समान मुख भी परागों से पूर्ण कमल वनों से सदा विमुख रहा करता था। वे कभी उसकी ओर ताकते भी नहीं थे। उन ने कबन्ध को देखा, सीता का समाचार भी उसी से पाया। फिर कवन्ध को शाप से छुड़ाया। इस के बाद पूर्णिमा से वियोगी चन्द्रमा के समान उदास होकर कवन्ध के बताए हुए रास्ते से चले। जब वे ऋष्यमूखपर्व्वत पर पहुंचे तब बड़े बली वानरराज सुग्रीव से उनकी मित्रता हो गई। दोनों को अपना अपना काम पूरा करना था। जब राम ने सुना कि सुग्रीव के बड़े भाई वालि ने सुग्रीव को राज्य छीन कर राज्य से वाहर निकाल दिया है तब राम ने वालि को मारने की प्रतिज्ञा की। क्योंकि वे अपने मित्र को सुखी करना चाहते थे। राम किष्किन्धा में गये। वहां जाकर उन ने बड़े तीखे तीर से बालि को मारडाला। बात यह हुई कि जब सुग्रीव ने किष्किन्धा के द्वार पर जाकर बालि को

पुकारा, तब वालि आकर सुग्रीव से लड़ने लगा। उसी समय राम ने तीखे बाणों से पेड़ की ओट में खड़े होकर वालि को मारा। सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा और वालि के पुत्र अंगद को युवराज बना दिया। उस राजा के मन्त्री हनुमान् बनाये गये, जो बहुत बड़े वीर हैं। इसीलिये वे "महावीर" कहलाते हैं। इसी समय वर्षाऋतु आ गई। राम ने "प्रवर्षण" पर्वत पर अपना डेरा डाला। सुग्रीव ने पूरी आशा दी कि मैं बरसात के बीतते ही जानकी के ढूंढ़ने का पूरा प्रबंध कर दूंगा। इसी आशा से राम ने लक्ष्मण के साथ उस पर्वत पर रह कर, मेघ का घोर गर्जन, बिजलियों की तड़प, जुगुनू की चमक, फूले हुए कदम्बों का हिलना, और केतकियों का खिलना किसी तरह सह लिया।

वर्षा बीत गई, शरद आ गई, आकाश निर्मल हो गया। रास्ते सूख गये। जलों में कमल खिल गये। जब राम ने देखा कि उद्योग का समय आ गया, पर सुग्रीव सीता को ढंढ़ने के लिये कुछ उद्योग नहीं करते, तब क्रोधित हो कर लक्ष्मण को उन के पास भेजा। सुग्रीव राज का सुख भोग रहे थे, स्त्री आदि के प्रेम में लिप्त हो रहे थे, और अपने मित्र का काम बिलकुल ही भूल गये थे। जब लक्ष्मण क्रोधित हो कर सामने आये तब सुग्रीव ने लजाकर सिर झुका लिया। लक्ष्मण ने क्रोध से आंखें लाल कर के कहा— मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि—तुम ने नम्र हो कर अपना काम पूरा करा लिया। अब निर्दयी बन गये हो। इस वर्षा में पत्थरों पर सोने से मेरे पूज्य बड़े भाई को कितना कष्ट हुआ

है, क्या तुम नहीं जानते ? राजसुख में सारा उपकार भूल गये हो। जैसे पत्थर पर खेती व्यर्थ होती है वैसे ही कृतघ्नों के हृदय पर उपकार व्यर्थ हो जाते हैं। दुष्टों की प्रीति बड़ी चंचल होती है, वह प्रीति गिरगिट, कछुआ, मछली तथा सांप की जीभ, और संध्या नयेपत्ते, तथा हथिनी के कानों के समान हिलने तथा बदलने वाली है। वह प्रीति विजली,राजा की वुद्धी और स्त्री के चित्त के समान बदलती रहती है। वह खलों की उन्नति, और भाटों की प्रशंसा के समान व्यर्थ है। उस का कुछ भी ठिकाना नहीं है।

लक्ष्मण की यह बात सुनकर सुग्रीव ने अपने को पूरा अपराधी समझ, लज्जा से सिर झुका लिया। उन ने प्रार्थना करके लक्ष्मण को प्रसन्न किया। फिर सीता को ढूंढ़ने के लिये सेना तैयार की। लक्ष्मण के साथ ही सुग्रीव राम के पास पहुंचे। राम को अनेक प्रकार से विनय कर प्रसन्न किया। फिर सब दिशाओं को जीतने के लिये अपनी सेना को आज्ञा दी। जब सीता को ढूंढ़ने के लिये सेना चली तब वानर भालुओं के चलने से ऐसी धूल उड़ी जिस से आकाश छिप गया। जान पड़ता था कि आकाश में बादल छा गये हैं। दिन में भी घोर अंधियारा फैल गया। जान पड़ता था सारी दिशाएं विंध्य पर्वत से घिरी हुई हैं। बड़ी शीघ्रता से अङ्गद, हनुमान, मयन्द, नील आदि वीर दक्षिण समुद्र के किनारे पहुंचे, जहां बड़ी ऊंची ऊंची तरंगें उठ रही थीं। जान पड़ता था कि वे तरंगें आकाशगङ्गा में मिलना चाहती हैं। उन तरङ्गों को देख सब वीरों ने समझ लिया कि

हमलोगों का यहां तक आने का सब परिश्रम व्यर्थ हो गया। उन की धीरता जाती रही।

वालि के पुत्र अंगद ने कहा—समुद्र की लहरें देख मेरा तो बल का सब अहङ्कार नष्ट हो गया। कोई इस समुद्र को पार नहीं कर सकता। सीता भी न मिली। लौट कर जाना भी ठीक नहीं। कपिराज सुग्रीव का क्रोध कौन सह सकेगा। अब यहीं रह कर हम लोगों को तप करना चाहिये। राजा के यहां जाकर अवमान सहने से वन में रहना अच्छा है। जटायु ही धन्य थे, जो परोपकार के लिये मर कर भी अब तक कीर्त्ति के कारण जीते हैं। उन की कीर्त्ति सदा बनी रहेगी।

अंगद ऐसी ही बातें कह रहे थे, उसी समय उन के समीप सम्पातिनाम गीध आ पहुंचा। उस ने वानरों से कहा। "मेरे भाई जटायु उड़ने में मुझ से होड़ करते थे और वे अपने को बड़ा भारी उड़ाकू समझते थे। मैं ने उन्हें समझाया, पर उन का हठ नहीं छूटा। दोनों आकाश में उड़ कर सूर्य के पास तक पहुंचे। उन का शरीर जलने लगा। मैं ने अपने पंखों से ढक कर उन्हें बचाया। पर मेरे ही पंख जल गये। मैं मूर्च्छित हो कर भूमि पर आ गिरा। सूर्य ने मुझ से कहा।" जब तुम राम का समाचार सुनोगे तब तुम्हारे पंख फिर जम जायंगे और तुम पूरे बलवान् हो जाओगे। देखो ये मेरे पंख उग आये। मेरा शाप छूट गया। मैं यहीं से उड़ कर देख रहा हूं कि रावण ने सीता को लङ्का के वन में चुरा रखा है।" ऐसा कह कर वह गीध चला गया।

इस के बाद जामवन्त ने हनुमान को लङ्का में जाने की राय दी। अङ्गद आदि वानरों ने भी उन से प्रार्थना की। हनुमान सुन कर प्रसन्नता से अपना शरीर बढ़ाने लगे। वे वायु के पुत्र थे और बड़े बली थे। वे महेन्द्र पर्वत पर च ़ गये। अपने बोझ से उसे खूब दबाया, फिर बड़े ज़ोर से उछले। जान पड़ा कि फिर सूर्य को पकड़ने के लिये उड़े हैं। उन के शरीर के झोंके से समुद्र का जल उछलने लगा, जिस से जलविन्दुओं के सैकड़ों पहाड़ बन गये। इस कारण जान पड़ता था कि समुद्र हनुमान का कूदना देख कर हंस रहा है। जिस समय वे जा रहे थे, सिंहिका ने उन्हें पकड़ना चाहा, पर उस को उन ने ऐसा मारा, जैसे सूर्य अंधेरी रात को। बीच में मैनाक पर्वत समुद्र से निकला। उस ने इन्हें अपने शिखर पर विश्राम करने के लिये कहा, किन्तु हनुमान उस का सिर अपने हाथ से छूकर आगे चले गये। इतने ही से उस का प्रेमपालन किया। अन्त में समुद्र लांघ कर लङ्का की सीमा पर एक पर्वत के ऊपर जा खड़े हुए।

थोड़ी देर के बाद रात होगई, सब दिशाओं में चांदनी छिटक गई, सारी लङ्का जगमगा उठी। हनुमान ने लङ्का के हर एक स्थानों को देखा। अन्त में अशोकवाटिका में पहुंचे। वहां सीता से बातचीत हुई। हनुमान ने अशोकवाटिका के वृक्ष तोड़ डाले, पर्वतों को हिला दिया, बहुत से राक्षसों तथा परम वीर अक्ष को मारा। अन्त में मेघनाद से युद्ध किया। मेघनाद ने हनुमान को जनेऊ से बांध दिया। तौभी उन ने अपनी पूंछ की आग से लंका को जलाया, सो तो तुम ने अपनी आंखों देखा

है। ऐ रावण ये सब बातें तुम्हारीही कुमति से हुई हैं। मैं ने ये बातें तुम से भक्ति के कारण कही हैं, अपनी भलाई के लिये नहीं। सुन कर भौंहें टेढ़ी मत करो, खूब सोच विचार कर काम करो।

उस की यह बात सुन कर रावण गला झुका कर सोचने लगा। दूसरे दिन भोर होते ही रावण का छोटा भाई "बिभीषण" सभा में जा कर अपने बड़े भाई राक्षसराज रावण से यों कहने लगा। " ऐ महाराज! जो छोटी सी विपत्ति को यत्न कर के नहीं मिटाता, उस की निन्दा होती है और उसे बड़ी बड़ी विपत्तियां आ घेरती हैं। बुद्धिमानों की बुद्धि कभी बुरे कामों की ओर नहीं झुकती। अच्छे लोग कभी चुपचाप नहीं बैठते। जिन के भाग्य बिगड़ जाते हैं वेही बुरे काम करते हैं और भलाई की बात नहीं सुनते। वानर ने आकर जो आप का निरादर किया है वह भी आप ही की कुनीति का फल है। यह बात सीता को चुरालाने ही से हुई है। इसलिये सीता को देही देना अच्छा है। आश्चर्य की बात है कि किसी दूत ने आप को यह समाचार नहीं जनाया कि "राम समुद्र के किनारे आ पहुंचे, जिन के अनुचर वानरों के राजा सुग्रीव और महावीर हनुमान हैं।" आप सीता को सौंप कर रामचन्द्र को प्रसन्न कीजिये। वे सीता को पाते ही प्रसन्न हो जायंगे। नहीं तो राम के बाणों की प्रबल धारा में आप डूब जायंगे। उस समय सीता का दे देना ही आप का अवलम्ब होगा और वही उस प्रबल बाणधारा से आप को बचावेगा। ये राक्षस डर से आप की भलाई की बात नहीं कहते। वे सदा मुंहदेखी बात कहा करते हैं और आप को प्रसन्न करने के लिये चिकनी चुपड़ी बातें कहा करते हैं।

विभीषण की ऐसी बात सुन कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। उस ने म्यान से तलवार खींच ली और उसी सभा में विभीषण की पीठ पर एक लात मारी। और चोपदारों से कह कर उस को अपनी सभा से निकाल बाहर किया। विभीषण को बड़ी लज्जा हुई। वह शीघ्रता से राम के पास चला आया।

दूसरे दिन एक दूत ने रावण के पास आकर कहा—"ऐ महाराज! मैं राम की सेना का सब भेद लेकर आया हूं। विभीषण यहां से जाकर रामचन्द्र के पैरों पर जा पड़ा है। राम ने बड़े प्रेम से उसे गले लगाया है और उसे अपने चरणों के अंगूठे से उस के सिर में केसर चन्दन का तिलक लगाकर लंका का राजा अभी से बना दिया है। वह उन का परम शुभचिन्तक मन्त्री बन गया है। वह सदा उन को हित की बातें बताया करता है। इस जगत् में भाई बन्धु या परिवार कुछ चीज़ नहीं है। जो जिस की भलाई करे, वही उस का भाई बन्धु है। राम विभीषण का बहुत विश्वास करते हैं। विभीषण के ही कहने से रामचन्द्र सारी सेना लेकर समुद्र से रास्ता मांगने के लिये तीन दिनों तक बिना अन्नजल पड़े थे। जब अहंकार से समुद्र ने पार होने का कुछ भी उपाय नहीं बताया, तब राम ने समुद्र में अनेक भयंकर बाण छोड़े। समुद्र डर कर राम की शरण में आ पहुंचा और पुल बांधने की राय दी। संसार का यही नियम है कि कोमल से कोई नहीं डरता और क्रूर से सभी डरते हैं। फिर राम ने बानरों के हाथ से समुद्र में पुल बंधवा दिया है। बड़े आश्चर्य की बात है कि राम के दृढ़निश्चय और प्रभाव से पत्थर की

बड़ी बड़ी चट्टानें भी पानी में उतरा रही हैं। औ क्या कहें। दैवसंयोग से अब समुद्र में पुल बंधगया, अब पानी पार कर सभी बिना रोकटोक आने जाने लगेंगे। इस से लङ्का पर विपत्ति आ जायगी और राम का उदय हो जायगा। राम समुद्र को पार कर गये, अब वे त्रिकूट की चोटी पर सारी सेना लेकर ठहरे हुए हैं। बन्दरों की सेना से सारी दिशाएं भर गई हैं।

यह कह कर चुप चाप दूत चला गया। "मेरा भाई विभीषण मनुष्य का दास बन गया" यह सोच कर रावण का मन बड़ा उदास हुआ। समुद्र में पुल का तैयार होना मन में भी नहीं आता था, वह हो गया। यह बड़े आश्चर्य की बात है। इन सभी बातों को सोच कर रावण के मन में लज्जा, द्वेष, चिन्ता और क्रोध हुआ।

थोड़े ही दिनों के बाद युद्ध की तैयारी हो गई। राक्षस नगाड़ा बजाने लगे। इधर वानर भालू बड़े ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगे, जिस से पत्थर में टकराती हुई ध्वनि चारों ओर फैल गई। दोनों दलों में घमासान लड़ाई छिड़ गई। राक्षस लोग अस्त्र शस्त्र चलाने लगे और बन्दर भालू पेड़ तथा पत्थर फेंकने लगे। इन दोनों दलों के घोर युद्ध से लंका हिल उठी।

इस के बाद दूतों का प्रधान "विद्युन्मुख" रावण के पास पहुंचा। उस ने रावण से कहा—ऐ राक्षसेन्द्र रावण, मैं अपनी आंखों देख आया हूं। लड़ाई बड़ी भयङ्कर हो रही है। कुछ देर तक तो लड़ाई दोनों तरफ बराबर रही, किन्तु थोड़ी ही देर बाद राक्षसों की सेना ढीली पड़ गई। यह देख मेघनाद पहुंचा। उस ने बड़े पराक्रम से राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को भूमि पर

मार गिराया। उन्हें नागास्त्र से बांध लिया और वानरों की सेना को तितर बितर करदिया। जो हो, उन दोनों के प्रभाव बड़े विलक्षण हैं। उन दोनों ने गरुड़ को बुलाया। गरुड़ को देखते ही सब सर्प भाग गये। दोनों का बन्धन नष्ट हो गया। तुरत ही दोनों उठ खड़े हुए। अब पराक्रम करना व्यर्थ है। भाग्य सब से प्रबल है। जब फिर नया बल पाकर बानर भालू बड़े उत्साह से लड़ने लगे तब प्रहस्त, धूम्राक्ष आदि सभी निर्बल पड़ गये। धीरे धीरे राक्षसों की सेना ढीली होने लगी। युद्ध रूपी भूमण्डल के धारण करने वाले पर्वतों के समान प्रहस्त आदि राक्षस जब गिर गये, तब राक्षसों की धीरता जाती रही। आप की आज्ञा से जगाने के लिये कुम्भकर्ण के शरीर पर सैकड़ों हाथी घोड़े दौड़ाये गये, तो भी उस की नींद नहीं खुली। न मालूम उस की कैसी नींद है।

दूत की बात सुन कर रावण युद्ध में लड़कर मरने के लिये तैयार हो गया। जब घर में कोई परिवार ही न रहा, तब सब सम्पत्तियां निर्जनवन के समान हो गईं। बड़े परिश्रम से जब कुम्भकर्ण की नींद खुली, तब उस ने राम लक्ष्मण के साथ युद्ध होने की बात सुनी। फिर वह तुरत ही स्नान भोजन कर, रावण के पास पहुंचा। उस ने अपने बड़े भाई रावण से कहा—"अजी, तुम ने बड़ा बुरा काम किया। क्या किसी मन्त्री ने तुम को ऐसा करने से मना नहीं किया था? क्यों तुम ने कामरूपी अग्नि में, क्रोध रूपी लकड़ी लगाकर सारी विभूति जला दी? क्या तुम ने नीति की बात तनिक भी नहीं सोची? क्या तुम ने यह भी नहीं सोचा कि इस अगाध समुद्र में पुल बांधना हंसी खेल का

काम नहीं है ? क्या किसी मनुष्य में ऐसी शक्ति हो सकती है ? जिस की भौंहें टेढ़ी होने ही से समुद्र का जल ठहर गया और उस पर सब पहाड़ तैरने लगे। हा ! दूरदर्शी तथा विचारवान् विभीषण को भी तुम ने घर से निकाल दिया, जो सदा तुम्हारी भलाई की चिन्ता किया करता था। जब मंत्र और तन्त्र जानने वाले वैद्य को पहले ही घर से निकाल दिया और उस के बाद हलाहल विष खा लिया, तब प्राण बचने का उपाय ही क्या है ? विपत्ति में आकर फंसे हो, उसे छोड़ भी नहीं सकते, भलाई करने वाले मन्त्रियों पर तुम्हारी प्रीति नहीं है, दुष्टों ही पर प्रेम करते हो, उचित बात पसन्द नहीं आती, अपना हठ छोड़ते नहीं हो ये सब नाश होने के लक्षण हैं।

यद्यपि कुम्भकर्ण ने अच्छी बातें कहीं, पर रावण को अच्छी नहीं लगीं। विनाश के समय ऐसी बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती, जिस से अज्ञान छूटे। रावण ने कहा—मैं जानता हू तुम बड़े भारी पण्डित हो। तुम को इस समय मैं ने शिक्षा देने के लिये नहीं जगाया है। तुम्हारी दोनों भुजाएं व्यर्थ हैं। जाओ, खूब खाकर फिर घोर नींद में सो जाओ।

बड़े भाई की बात सुन कर कुम्भकर्ण चुप हो गया। उस ने सोच लिया कि "भावी नहीं टलती।" इसलिये अब शत्रुओं का नाश ही करने के लिये पराक्रम करना ठीक है। यह सोच कर वह युद्ध में पहुंचा। उसे देखते ही सब वानर भालू रण छोड़ भाग चले। चारों ओर धूल उड़ने लगी, जिस से सारा संसार धुंधला हो गया। उस के शरीर की छाया से नीचे अंधेरा हो

गया। आकाश में रहने वाले देवताओं ने समझा कि यह राहु ही स्वरूप धारण कर सूर्य को ग्रास करने के लिये दौड़ा है। कुम्भकर्ण रण के बीच घुस गया। अस्त्र शस्त्र तथा पेड़ पत्थरों की चोट से उस के शरीर से खून की धारा बह चली। उस ने बड़ी वीरता दिखलाई। उसी समय उसे अपने बड़े भाई का कठोर वचन भी याद आ गया। उस ने एक दूत को भेज कर रावण के पास यह कहला भेजा कि—ऐ राक्षसेन्द्र रावण! आप के कठोर वचनों को याद कर तुम्हारा भाई कुम्भकर्ण क्रोधित हो कर इस युद्ध में प्रलय करने वाले काल के समान लीला कर रहा है।"

कुम्भकर्ण बड़ा बली था। उस का शरीर भी पर्वत के समान था। उस के खड़े होने पर ज्ञान पड़ता था कि उस के पैरों के बोझ से पृथिवी फट जायगी। उस का सिर आकाश में जा लगा था। दिशाओं की रक्षा करने वाले हाथी उसे देख डर से मरे जा रहे थे। उस ने अपने एक ही हाथ से विशाल शरीर वाले सुग्रीव को एक चिड़िये के समान उठा लिया और गला दबा कर भूमि पर फेंक दिया। अंगद आदि वीरों का चलना फिरना भी उसी के धक्के से रुक गया। उस समय विभीषण की राय से राम ने बड़े ज़ोर से धनुष खींचकर ऐसे ऐसे बाण मारे कि जिन से घायल हो कर वह अपनी ही सेना में गिरा। उस के शरीर के बोझ से हज़ारों राक्षस दबकर मर गये। इस प्रकार कुम्भकर्ण और उस के साथी, कुम्भ, निकुम्भ आदि सभी वीर राक्षस मारे गये। थोड़ी ही देर में बहुत से राक्षस यमपुर चले गये।

यह समाचार सुन कर मेघनाद को बड़ा क्रोध हुआ। शोक भी बहुत हुआ। उस ने रण में आकर एक ही क्षण में वानरों की सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। राम लक्ष्मण को भी बहुत घायल किया। सुग्रीव की भी यही दशा थी। वानरों के प्राण कण्ठ में आ गये, मरने में कुछ भी देर न थी। तब जाम्बवान् ने हनुमान से प्रार्थना की। महावीर हनुमान् ने अपना शरीर तीन सौ योजन ऊंचा बना दिया। उन का शरीर सूर्य के समान चमक रहा था। वे एक पहाड़ को उस के तालाब के साथ उठा लाये। उस तालाब की सुगन्ध से वानर भालुओं की मूर्च्छा छूट गई। रामलक्ष्मण दोनों भाई भी सचेत हो गये।

जब भाग्य बिगड़ता है तब सभी बातें बिगड़ जाती हैं और सभी उपाय भी व्यर्थ हो जाते हैं। उस की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है, उस पर विपत्तियां चढ़ बैठती हैं, उस की बुद्धि मैली हो जाती है, कीर्त्ति नष्ट हो जाती है, और कुल कलङ्कित हो जाता है। उस समय बुद्धिमान जनों के भी किये हुए सभी काम उलटे हो जाते हैं। इस के बाद मेघनाद "ब्रह्मास्त्र" को सिद्ध करने के लिये, "निकुम्भिल" नामक वन में चला गया। वहाँ जाकर वह अग्नि में रुधिर से होम करने लगा। उसी समय विभीषण ने राम से यह भेद बताया कि—यदि यज्ञ के बीच ही में कोई विघ्न हो जायगा तो मेघनाद मारा जायगा, नहीं तो फिर किसी उपाय से वह नहीं मारा जा सकता।" यह सुन कर राम की आज्ञा से लक्ष्मण यज्ञ ही में युद्ध करने के लिये आ पहुंचे।

अब दोनों में घमसान लड़ाई होने लगी। दोनों ओर से

बड़े बड़े भयंकर अस्त्र शस्त्र चलाने लगे। मेघनाद ने बड़े क्रोध से बरछी चलाई, जिस से लक्ष्मण की छाती में छेद हो गया, तोभी लक्ष्मण ने अपने को सम्हाल कर अपने तीखे तीखे तीरों से मेघनाद का गला काट कर भूमि पर गिरा दिया।

यह सुन कर रावण के हृदय में वज्र सा लगा। शोक से उस की धीरता जाती रही। वह मूर्च्छित होकर पर्वत के समान गिर पड़ा। उस का मुकुट भी गिर गया, जिस के रत्न चारों ओर बिखर गये। कुछ देर के बाद उसे होश हुआ। भाई के मरने का शोक तो थाही यह पुत्र का शोक भी हो गया। उस का हृदय सौ टुकड़े हो गया। उस ने सीता के मिलने की आशा छोड़ दी। अब उसे मरने ही की इच्छा हुई। वह अपने भाई कुम्भकर्ण के ही भरोसे सब काम करता था, उस का पुत्र भी बहुत बड़ा वीर था। इन दोनों के न रहने से अपना जीवन भी उसे भार जान पड़ने लगा। उस के हृदय में हज़ारों छेद हो गये। तोभी उस का अहंकार नष्ट नहीं हुआ। वह रण में जा डटा। उसे देखते ही सब वानर भालू भागने लगे। राम और रावण दोनों अपने रथों पर चढ़ गये। दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। रावण युद्ध कर के मरना चाहता था और राम अपने शत्रु को मारना चाहते थे। जोहो रावण बहुत बड़ा वीर था। वह बड़े वेग से बाणों की वर्षा करता था, जिस से राम की सेना नष्ट होती चली जा रही थी। उस की वीरता देख राम को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ देर तक हाथों में तीर धनुष लिए टकटकी लगाये चुप चाप उस की लीला देखते रहे। बात भी ऐसी ही थी। उस का शरीर ऐसा

बली था कि जिस ने कैलास पर्वत को उठा लिया । उस का तेज ऐसा था कि इन्द्र का महा बलवान हाथी डर से कांपने लगता था । उस का प्रताप ऐसा था कि आठो लोकपाल सिर झुका कर उस की आज्ञा मानते थे । वह तीनों लोकों का जीतनेवाला था। पर ये सभी बातें पाप से नष्ट हो गईं ।

इस के बाद रामचन्द्र ने अपने उन बाणों से रावण के दसों सिर काट गिराये, जिन से आग की चिनगारियां चारो ओर बरस रही थीं । जब तक उस के दसों सिर पृथिवी पर नहीं गिर पड़े तब तक रामचन्द्र का क्रोध भी शान्त नहीं हुआ ।

राम ने रावण को मार, उस का राज्य विभीषण को दे दिया । सब के बाद उन ने सीता को पाया, पर दूसरे के घर में रहने के कारण अपने पास रखना न चाहा । जानकी एक तो पति वियोग ही से दुबली हो रही थीं, दूसरे रामचन्द्र की उदासीनता देख उन्हें बड़ा क्रोध हुआ । वे अपनी सचाई प्रगट करने के लिये धधकती आग में कूद पड़ीं । उन के पातिव्रत्यधर्म के प्रभाव से आग चन्दन के समान ठंढी होगई । उस पतिव्रता को पुत्री के समान गोद में लेकर अग्निदेव ने रामचन्द्र को सौंप दिया । यह देख देवता फूल बरसाने लगे, और लोकपाल स्तुति करने लगे । अब सब को लेकर राम अयोध्या लौटे । वहां भरत ने बड़े भक्ति भाव से उन को प्रणाम किया । रामचन्द्र भी आनन्द से आंसू बहाने लगे । भरत के आंसुओं की धारा से रामचन्द्र के दोनों पैर भींग गये । अन्त में विभीषण तथा सुग्रीव आदि राजाओं ने

रामचन्द्र का राज्याभिषेक किया और रामचन्द्र सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

बहुत दिन बीत गये। एक दिन की बात है कि राम का गुप्त दूत उन के पास एकान्त में आया। उस ने कहा जानकी जी जो रावण की लंका में इतने दिनों तक रहीं वह निन्दा नहीं मिटी। बहुत से नीच उन की निन्दा करते हैं। " यह सुनकर राम को बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि अच्छी तरह जानते थे कि जानकी जी पूर्ण पतिव्रता हैं, तोभी वे लोक की निन्दा न सह-सके। यद्यपि जानकी उस समय गर्भवती थीं, तो भी उन ने लक्ष्मण के हाथ जानकी को वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में छुड़वा दिया।

इस जगत में मनुष्य का जीवन दुःखमय है, सुख और यौवन दोनों ही अनित्य हैं। ये बहुत दिनों तक नहीं ठहरते। धन बिजुली के समान चंचल है, और प्रिय जनों का संग तुरत ही छूटजाने वालाहै। जब जानकी बालिका थीं, तब जमीन में गाड़दी गईं, इस के बाद घोर वन में रह कर दुःखभागिनी बनीं, फिर रावण से हरी गईं, और लंका में कैद की गईं। फिर जब राम के पास आईं, तब शुद्धि के लिये अग्नि में डाल दी गईं। अन्त में जब अयोध्या में पहुंची, तब लोकनिन्दा के डर से घर से निकाल कर वाल्मीकि के तपोवन में छोड़ी गईं। हा! संसार में केवल दुःख ही दुःख है।

वाल्मीकि के तपोवन में सीता ने बड़ा विलाप किया। रोते रोते उन का आंचल भींग गया। उसी समय वहां महर्षि बाल्मीकी

आ पहुंचे। उन्हें दया आ गई। वे पिता के समान कोमल वचनों से उन्हें धीरज देकर अपने आश्रम में लेआये। वहां वह शरीरत्याग करने की इच्छा से समय बिताने लगीं। कुछ समय के बाद उन्हें दो लड़के हुए, जिन के रूप ठीक पिता ही के समान थे। उन्हें देख सीता मोहित हो गईं। शरीरत्याग की इच्छा छोड़ उन्हीं के लालन पालन में लग गईं। वाल्मीकि मुनि ने उन का क्षत्रियोचित संस्कार कर के क्रमशः "कुश" और "लव" नाम रख दिया। जब दोनों कुछ सयाने हुए तब वाल्मीकि ने उन को अपना बनाया आदि काव्य रामायण पाठ कराया। दोनों बड़े मधुर स्वर से रामायण को गाने लगे। इधर यद्यपि रामचन्द्र ने लोकनिन्दा के डर से सीता का त्याग कर दिया, तो भी वे उन्हीं के इस द्वितीय विरह में दिन दिन दुबले होने लगे। उन का शरीर कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा के समान प्रति दिन क्षीण होने लगा। राज्य की सारी सम्पत्तियां मसान के समान दुःखदायिनी होने लगीं, जहां चिता के समान चिन्ता धधक रही थी। यदि हृदय में शोक है तो जीवन भी व्यर्थ है। भोग रोग के समान हैं। रत्नों के धारण करने से क्या, चन्दन से क्या, और ऊंची चमकीली अटारियों से ही क्या? जब वियोग का शूल हृदय में घुस गया, तो सभी व्यर्थ हैं। वे सुख के बदले दुःख देते हैं।

एक दिन की बात है कि एक कुत्ता रामचन्द्र की सभा में आ पहुंचा। उस का सिर फूट गया था, जिस से खून बह रहा था। उस ने प्रार्थना की कि—ऐ महाराज! बिना अपराध "यतिव्रत" ब्राह्मण ने मुझे मारा है। वह ब्राह्मण बुलाया गया।

उस से पूछा गया। वह चुप हो गया। उस ने कुछ भी नहीं कहा "हां या नहीं"। रामचन्द्र ने सभासदों से पूछा कि इस ब्राह्मण को क्या दण्ड देना चाहिये? किसी ने कुछ नहीं कहा। सब चुप हो गये। फिर उसी कुत्ते ने कहा—महाराज, मैं पूर्व जन्म में एक मठ का पुजारी था। मुझे नहीं मालूम, किस अपराध से मैं कुत्ता हो गया। आप इस को भी मठ का पुजारी बना दीजिये। यह भी अपने ही अपराध से दूसरे जन्म में कुत्ता हो जायगा। क्योंकि जो अपना क्रोध नहीं रोक सकता, वह अपना लोभ भी न रोक सकेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या, ये सब एक ही अज्ञान के लड़के हैं। जिस के पास एक रहता है, उस के पास सभी रहते हैं। यह वचन सुन कर रामचन्द्र ने उस ब्राह्मण को मतवाले हाथी पर बैठा कर और छत्र चामर दे कर, एक मठ का अधिकारी बना दिया।

एक दिन च्यवनऋषि सभा में आये। उन ने रामजी से कहा कि "ऐ महाराज, लवणासुर बड़ा उपद्रव मचा रहा है। उसे मारने का कोई उपाय कीजिये।" यह वचन सुनते ही रामचन्द्र ने लवणासुर का नाश करने के लिये शत्रुघ्न को आज्ञा दी। शत्रुघ्न ने जा कर शूल से लवणासुर को मारा और उस की सुवर्णमयी पुरी को फिर से बसाया जिस का नाम "मधुरा" रखा उस को अब सब लोग मथुरा कहते हैं। कुछ दिनों के बाद एक ब्राह्मण अपने आठ बरस के मरे हुए लड़के को कंधे पर लिये सभाभवन के द्वार पर आ पहुंचा। चोपदारों ने मना किया तो भी वह भीतर चला ही आया। वह भीतर आकर यों चिल्लाने लगा—"हा, मैं बुड्ढा हो

गया, मेरा जवान लड़का मर गया, अब मरने के बाद मुझे पिण्ड कौन देगा और तर्पण कौन करेगा। हाय रे, यह अकालमृत्यु राजाही के दोष से हुई है। जब राजा अधर्मी हो जाता है तभी प्रजाओं में अकाल, चोरी, आग, महामारी आदि उपद्रव होते हैं। आज राजा पृथु, भगीरथ, दशरथ आदि पवित्र राजाओं का यश नष्ट हो गया। अब के राजा पापी हो गये, सारी पृथिवी पर विपत्ति छा गई। राजा के पाप से पृथिवी धसती चली जारही है।" ब्राह्मण का ऐसा चिल्लाना सुन कर रामचन्द्र को बड़ी करुणा आई। सभासदों से पूछने पर भी किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। अन्त में नारद जी ने कहा—सुनिये, "दक्षिण दिशा के एक वन में 'शम्बूक' नामक एक शूद्र कठिन तप कर रहा है। इसी कारण इस ब्राह्मण का लड़का मरा है।" नारद की बात सुनतेही रामचन्द्र विमान पर चढ़ कर दक्षिण दिशा में चले गये और उस शूद्र को मार कर तुरत लौट आये। रामचन्द्र के मारतेही वह शूद्र विमान पर चढ़ कर स्वर्ग में चला गया और इधर उस ब्राह्मण का लड़का जी उठा। ब्राह्मण राम जीकी स्तुति कर के अपने घर चला गया।

अन्त में रामचन्द्र ने "अश्वमेध" यज्ञ प्रारम्भ किया। स्त्री के बिना यज्ञ नहीं हो सकता। इसलिये सीता की मूर्त्ति सुवर्ण की बनाई गई। वही रामचन्द्र के बगल में रखी गई। जान पड़ता था कि साक्षात् सीता ही आकर बैठी हैं और वन में त्याग करने के क्रोध से चुप हैं। उसी समय बाल्मीकि भी कुश और लव को साथ लिये आ पहुंचे। दोनों राम के सामने सभा में बैठ कर रामायण को बड़े मीठे स्वर से गाने लगे, जिसे सुन कर सभी

प्रसन्न हो गये। वाल्मीकि के कहने से रामचन्द्र ने जाना कि ये दोनों—"कुश और लव"—मेरे ही पुत्र हैं। दोनों के स्वरूप भी ठीक २ राम ही के समान थे। रामचन्द्र ने वाल्मीकि से प्रार्थना की कि जानकी फिर सभा में आकर अपनी पवित्रता का परिचय दें।

वाल्मीकि अपने शिष्यों को भेजकर जानकी को बुलवाया। परम लज्जावती जानकी, हजारों राजाओं के बीच, उस सभा में आईं। उन के हृदय में क्रोध हो आया था, इसलिये लज्जा छोड़ कर बड़े ऊंचे स्वर से उन्हों ने कहा—"ऐ माता पृथिवी, यदि मैं ने मन से, वचन से, या कर्म से, किसी दूसरे पति की इच्छा न की हो, वा कभी स्पर्श भी न किया हो और मेरा परम पवित्र पातिव्रत्य धर्म भङ्ग न हुआ हो तो तू फट जा और मैं तेरी गोद में आ बैठूं।" यह पवित्र वचन सुनते ही सभा के बीच की पृथिवी फट गई और उस के भीतर से सुवर्ण सिंहासन पर बैठी हुई पृथिवी देवी मूर्त्ति धारण कर निकल आईं। वे जानकी को गोद में लेकर फिर पृथिवी में चली गईं। उस समय बड़े वेग से भूषणों की झनकार हुई। जान पड़ा कि वह झनकार रामचन्द्र से कह रही है कि अब जानकी के लिये सोच न करना। राम को बड़ा क्रोध हुआ। उन्हों ने पाताल फोड़ कर सीता को लाने की इच्छा की, पर ब्रह्मा ने मना किया। अन्त में सीता के मिलने से निराश हो कर रामचन्द्र दोनो पुत्रों ही को प्रेम करने लगे।

इस प्रकार यज्ञ समाप्त करके रामचन्द्र समय पाकर अपने भाइयों के साथ दिव्यलोक में चले गये किन्तु, इस भूमण्डल पर अपनी कीर्त्ति के सजीव खंभों के समान चिरञ्जीवी हनुमान और विभीषण को छोड़ गये॥

कृष्णावतार ८

अहा ! यह समय भी एक समुद्र के समान है, जिस में अनेक युग पर्वतों के समान डूबते उतराते रहते हैं। क्रमशः दिन, सप्ताह, पक्ष, मास और वर्ष बीतने लगे। ऐसे ही कई युग बीत गये। फिर पृथ्वी राक्षसों तथा पापियों के बोझ से दबने लगी। वह व्याकुल होकर क्षीर समुद्र के तट पर शेषशायी विष्णु की शरण में जा पहुंची। उस समय भगवान् उठ कर बैठे हुए थे। उन के मुँह की परछाईं शेषनाग के सिर की मणियों में पड़ रही थी। ब्रह्मा, शिव आदि अगणित देवता तथा नारद आदि मुनि हाथ जोड़ कर चारों ओर से घेरे खड़े हुए थे। लक्ष्मी जी उन के पैरों को दबा रही थीं। उन के मुँह की परछाईं भगवान के गले में लटके हुए कौस्तुभ मणि में पड़ रही थी। सब देवताओं ने भगवान से पूछा—"भगवन् ! आप को सुख से नीन्द आई थी न ?" उसी समय पृथ्वी ने आकर भगवान को प्रणाम किया। पृथ्वी का रूप मरकत मणि के समान काला हो रहा था। उस के गले में मोतियों की मालाएं लटक रही थीं। वह तारों से भरे आकाश के समान जान पड़ती थी। जब वह झुक कर प्रणाम करने लगी, तब उस के कानों के कमल हिलने लगे, जिन से भौंरे निकल कर उड़ने लगे। यद्यपि वे (भगवान) सब बातें जानते थे तो भी पृथ्वी ने कहा "भगवन् !

आप सारे संसार का दुःख दूर करनेवाले और बड़े दयालु हैं। आप तो सभी बातें जानते ही हैं, पर बिना कहे मुझ से नहीं रहा जाता। हिरण्याक्ष मुझे लेकर पाताल में चला गया था, मेरे पर्वत आदि सभी अंग बिखर गये थे, किन्तु आप ने वराह रूप धारण कर मुझे बचाया था। कालनेमि आदि राक्षसों को आप ने मेरा बोझ हलका करने के लिये मारा था, वे ही राक्षस अब फिर राजाओं के घर में उत्पन्न हुए हैं। कालनेमि उग्रसेन का लड़का होकर उत्पन्न हुआ। वह बड़ा दुष्ट है। उस के साथी भी वैसे ही दुष्ट हैं। योंही अनेक दुष्ट राजा उत्पन्न हुए हैं। मैं उन के बोझ से दब रही हूं; उन का भार अब मैं नहीं सह सकती। चारो ओर अधर्म हो रहा है। यह समय मुझे बड़ा दुःखदायी मालूम होता है।

पृथ्वी की बात सुनकर भगवान ने मुसका कर कहा—"अच्छा, जाओ, मैं सोच समझ कर सब काम करूंगा। पृथ्वी के चले जाने के बाद ब्रह्मा ने भगवान के मन की बात जान कर सब देवताओं से कहा—देखिये, हमलोगों के महा प्रभु पृथ्वी का भार उतारने के लिये यदुवंशियों के वृष्णि कुल में वसुदेव के पुत्र होकर अवतार लेंगे। आप लोग भी अपना २ अंश लेकर अवतार लें। ब्रह्मा की यह बात सुनकर सब देवता चले गये।

कुछ दिनों के बाद एक दिन नारद जी कलि का कौतुक देखते २ और वीणा बजाते २ मथुरा में आ पहुंचे। वे कंस के पास अकेले ही चले गये। कंस ने बड़ा आदर सत्कार किया। उन ने एकान्त में उस से कहा—राजा, अब तुम धर्म का कार्य किया

करो, पाप से अलग रहो, अपनी राज्यलक्ष्मी की रक्षा करो। देवताओं ने ऐसा ही उपाय किया है कि तुम्हारी बहिन देवकी के गर्भ से जो पुत्र पैदा होगा वही तुम्हारी लक्ष्मी और प्राणों का नाश करेगा।

यह कह नारद जी चले गये। उन के जाने के बाद पापी कंस ने देवकी के उत्पन्न हुए लड़कों को मारने की आज्ञा दी। इस प्रकार छः लड़के मारे गये। सातवें को देवकी ने चुराकर अपनी सौत रोहिणी को सौंप दिया। वही शेषनाग के अंश से बलदेव जी हुए। जब आठवां बालक उत्पन्न हुआ, तब उसी भादों की अंधेरी आधी रात ही में उसे लेकर वसुदेव जी यमुना पार कर के "नन्द" गोप के घर रख आये। और यशोदा की लड़की को उस के बदले में उठा लाये। और रात को चोरी से फिर घर आकर अपनी स्त्री देवकी की गोद में लाकर रख दिया। दूसरे दिन भोर होते ही कंस के दूतों ने उस कन्या को लाकर कंस के सामने पत्थर पर पटक दिया, पर वह लड़की उछल कर बिजली के समान चमकती हुई आकाश में उड़ गई और वह साक्षात् अष्टभुजा भगवती बनकर अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित होकर विन्ध्य पर्वत पर चली गई। यह तमाशा देख वसुदेव डर गये। वे बड़े लड़के को भी रोहिणी से लेकर धीरे से नन्द के ही घर पर रख आये। उन दोनों के नाम "बलदेव" और "कृष्ण" हुए। उन लड़कों के रहने से यशोदा की शोभा लक्ष्मी के समान हो गई। वे दोनों बालक बड़े ही सुन्दर थे। दोनों एक साथ में गंगा यमुना के समान शोभित होते थे।

बड़े का रङ्ग चन्द्रमा के समान गोरा था और छोटे का रङ्ग मरकत तथा नीलम के समान चमकीला और सांवला था। कंस ने अपनी रक्षा के लिये बहुत से बालकों को मार डाला सही, पर दैव ने उसे मार डालने का उपाय करही डाला। क्या वह किसी के रोके रुक सकता है ? ।

कंस ने सुना कि गोकुल में दो लड़के उत्पन्न हुए हैं, जो ठीक ठीक राजाओं के बालकों के समान सुन्दर हैं। उस के मन में शंका होगई। वह उन्हें मारने का उपाय करने लगा। जिस समय कृष्ण दूध पीकर सो रहे थे, उसी समय उन ने कंस के भेजे हुए "शकटासुर" को अपने पैरों के धक्के से मार डाला। कंस की भेजी पूतना अपने स्तनों में विष लपेट कर आई। कृष्ण ने उस का दूध पीकर उस के प्राण भी नष्ट कर दिये। अब धीरे २ वे दोनों लड़के पैरों के बल चलने लगे। यह देख यशोदा बहुत प्रसन्न हुई। अब कृष्ण बड़े वेग से दौड़ने लगे। यशोदा को डर हुआ कि कहीं दौड़ते २ ये गिर न जायं। इस लिये उस ने दौड़ने से मना किया। कृष्ण ने न माना। उस ने क्रोध कर के कृष्ण को ऊखल में कसकर बांध दिया। कृष्ण ऊखल को घसीटते २ अर्जुन के दो पेड़ों के बीच चले गये। ऊखल दोनों पेड़ों के बीच अटक गई। जब कृष्ण ने ज़ोर से खींचा, तब दोनों पेड़ गिर पड़े। तब बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ। सब गोकुल-वासी डर गये। इसी प्रकार उन ने बहुत लड़कखेल किये।

गोकुल की भूमि तो पहले भी मनोहारिणी थी ही, पर श्री कृष्ण के रहने से और भी मनोहारिणी हो गई। इन्द्र का नन्दन बन

भी उस की सुन्दरता देख लज्जित होता था। यमुना के तट की शोभा का वर्णन ता हो ही नहीं सकता। उस के तीर पर हरे वृक्ष तथा लताएं लहलहा रही थीं। स्वच्छ जल के झरने कल-कल शब्द कर रहे थे, जिसे सुन मयूरगण मेघध्वनि समझ कर नाच उठते थे। गोपियों का मधुर गान हरिण लोग कान उठाकर बड़े प्रेम से सुनते थे।

धीरे धीरे श्री कृष्ण का लड़कपन बीतने लगा। कुछ कुछ जवानी की झलक आने लगी। अब वे हज़ारों ग्वालवालों को लेकर गेंद खेलने लगे। एक दिन गेंद खेलते २ यमुना में जा गिरा। गेंद में उन का बड़ा प्रेम था। वे गेंद के साथ ही उसे लेने के लिये यमुना में कूद गये। लड़कों ने बहुत मना किया कि मत जाइये, वहां कालीय सर्प रहता है, वह बड़ा भयङ्कर है। उन ने न माना, वे कालीय का भवन देखने के लिये चलेही गये। वह स्थान बड़ा भयङ्कर जान पड़ा। उस के विष से वहां का जल काला हो रहा था। ये कूल के कदम्ब पर चढ़े बड़े धड़ाके के साथ कूदे थे, इस कारण जल में बड़ी २ लहरें उठने लगीं। यह देख कालीय बड़ा क्रोध कर के उठा। फन फैला कर इन की ओर दौड़ा। ये उछल कर उस के फन पर चढ़ गये। उन के शरीर के बोझ से कालीय दबने लगा। इस से क्रोध कर के बार-बार फुंकार करने लगा। उस के मुंह से विष झरने लगा, जिस से चारों ओर अन्धेरा हो गया और काला ही काला देख पड़ता था। जान पड़ता था कि हज़ारों सर्प कालीय की सहायता करने के लिये आजुटे हैं। कृष्णचन्द्र उस के फन पर

बड़े वेग से नाच रहे थे। अन्त में कालीय बहुत घबड़ा कर "त्राहि त्राहि" पुकारने लगा। भगवान ने कहा "अब तुम यह स्थान छोड़ कर समुद्र में चले जाओ। तुम्हारे फन पर मेरे चरणों का चिन्ह हो गया है, इस लिये अब गरुड़ से कुछ डर नहीं है।"

एक दिन दोनों भाई ग्वालबालों के साथ ताल बन में गये। वहां बलदेव जी ने "धेनुकासुर" को मारा। एक दिन की बात है कि "प्रलम्बासुर" ग्वाले का लड़का बन कर ग्वालबालों के झुण्ड में आ मिला और दोनों भाई के साथ गेंद खेलने लगा। समय पाकर बलदेव जी को कन्धे पर चढ़ा कर ले भागा। बलदेव जी ने मुक्कों से मार कर उस का सिर चकनाचूर कर दिया। अब गोवर्द्धन पहाड़ पर "इन्द्रयज्ञ" करने के लिये तैयारी होने लगी। अनेक प्रकार की खाने पीने की वस्तुएं बनाई गईं। श्री कृष्ण ने कहा "इन्द्र से हम लोगों का क्या लाभ है? गोवर्द्धन से हम लोगों का बड़ा उपकार होता है, इस से इसी की पूजा होनी चाहिये।" सब लोगों ने ऐसा ही किया। भगवान ने एक दूसरा ही दिव्य रूप धारण कर सब पदार्थों को खूब खाया। सब लोगों ने समझा कि गोवर्द्धन पर्वत ही रूप धारण कर पूजा लेने के लिये आगये हैं। पर इस कार्य से इन्द्र को बड़ा क्रोध हुआ। उन ने मेघों को आज्ञा दी कि "ब्रज को बहा दो।" अब बड़े वेग से मूसल धार पानी पड़ने लगा। चारों ओर अंधेरा छा गया। दिन रात की पहचान भी नहीं हो सकता थी। मानों अंधकार और मेघ सारे भूमण्डल को लील

जायेंगे । जान पड़ता था कि मेघ चिल्ला चिल्ला कर काल रात्रि को बुला रहे हैं। बिजलियों की चमक और कड़क से सारा संसार चमक कर हिल जाता था। जान पड़ता था कि ये मेघ सातों समुद्र पीकर यहां बरसाने के लिये आये हैं। सब को डर हो गया कि आज ही प्रलय हो जायगा। ब्रज के सब जीव व्याकुल हो उठे। गायें इधर उधर भागने लगीं। बच्छे कातर हो हुंकार करने लगे। कहीं किसी को ठहरने की शरण नहीं मिलती थी।

अब इन की दुर्दशा देख परमदयालु श्री कृष्ण के हृदय में बड़ी दया आई। उन ने झट पहाड़ को उठा लिया और सब को उस के तले रख कर बचाया। ग्वालबाल, गाय, बच्छे आदि सभी सुखी हो गये। भगवान की यह लीला देख समुद्र डर गये। उन्हें सन्देह हुआ कि "हम फिर मन्थराचल से मथे जायेंगे।" अगस्त्य ऋषि को आश्चर्य हुआ कि "क्या विन्ध्यपर्वत फिर उठ खड़ा हुआ?" यद्यपि वह समय भयानक था, तौभी उस समय भगवान की एक विचित्र ही शोभा हो रही थी। गोवर्द्धन भी उन के प्रभाव से छाते के समान हलका हो गया था। गोपियां प्रेम के मारे विह्वल हो गईं। वे सब हाथ उठा कर सहायता करने के लिये पर्वत को थामना चाहती थीं। पर उन के हाथ वहां तक नहीं पहुंचते थे, इस से एंड़ी अलगा कर पैर ऊंचा कर के उसे छूना चाहती थीं, तौभी नहीं छू सकती थीं। यह लीला देख भगवान मुसुकाने लगे। भगवान ने जब सब की रक्षा कर दी तब मेघ लज्जित हो कर लौट गये। इन्द्र भी एकान्त में भगवान के

पास पहुंचे। उनने बड़ी स्तुति की और कहा "भगवन् आप आज से सच्चे 'गोपालपति' हो गये। कामधेनु ने भी इस बात को मान लिया है।"

अब भगवान धीरे धीरे जवान होने लगे। जैसे हाथी मद को, और वृक्ष वसन्त को पाते हैं वैसे ही श्री कृष्ण ने नये यौवन को पा लिया। अवस्था के साथ ही साथ उन का प्रताप भी बढ़ने लगा और उत्साह भी उस के साथ ही था। उन की नई जवानी की लुनाई देख नयन मोहित हो जाते थे। वह सुन्दरता देख गोपियां पागल सी होने लगीं। उन की चाल धीमी पड़ गई। उन का मन सदा कृष्ण की टेढ़ी भौंहों के बीच ही रहने लगा। वे हर बातों में उन्हीं का नाम लेती थीं। नींद तो उन्हें आती ही न थी। न मालूम उन की लाज कहां चली गई। मन सदा कामदेव ही की ओर जाने लगा। गोपियों के प्राण उन्हीं में निवास करने लगे। वे लोकलजा छोड़ उन्हीं की सेवा करने लगीं। वे सदा उन्हीं का ध्यान करने लगीं। आपस में एक दूसरी को ताना देने लगी कि "क्या तुझे घमण्ड हो गया, क्या भगवान ने तुझे प्रेम-भरे नयनों से देखा है? जा, जा, तेरी जैसी उन्हें हज़ारों गोपियां हैं। क्या वे एक तुझे ही देखेंगे? क्या तू ही एक भाग्यवती है?"

उसी पागलपने में एक कहती थी "अरे काला भौंरा जा, हट जा, तू मेरा अंचल क्यों खींचता है, मेरी आंखों में क्यों समाए आता है, क्यों मेरे शरीर में लिपट कर मेरी गति रोकता है? हैं, क्या तू मेरे कोमल ओठों को भी काटेगा? री सखी! वेग आ, देख यह चंचल भौंरा मुझे सता रहा है, मुझे बचा। यह मुझे

फूल भी नहीं तोड़ने देता। नहीं जान पड़ता हटाने से कहां जा छिपता है और तुरत ही फिर आगे आ जाता है। " इसी प्रकार गोपियों के स्वभाव भी बदल गये थे। जो गोपियां भोली भाली थीं वे भी अब कृष्ण को मोहित करने के लिये अपना सिंगार करके अपनी परछाईं जल में देखने लगीं। ललाट में बेंदी और आंखों में काजल लगाने लगीं। लताओं के सुहावने पल्लव तोड़ कर कानों के भूषण बनाने लगीं। बालों में सुगन्धित फूल गूथने लगीं और पैरों में महावर या मेंहदी लगाने लगीं। नहीं जान पड़ता, इन्हें सिंगार करना किस ने सिखला दिया। ठीक है, जाना, सब का गुरु नया प्रेम ही है।

यों तो ब्रज में हज़ारों गोपियां थीं और श्री कृष्णचन्द्र जी सभी को प्यार करते तथा प्रसन्न रखते थे। पर उन का सब से अधिक प्रेम श्री राधा ही पर था। जिस प्रकार भौंरा सब से अधिक प्रीति चमेली पर रखता है, उसी प्रकार भगवान राधा पर अधिक प्रीति रखते थे। बात भी ऐसी ही थी। ऐसा होना उचित भी था। राधा के समान सुन्दरी स्त्री विधाता की सृष्टि में कभी उत्पन्न ही नहीं हुई। कदाचित् श्री कृष्ण के समान रूपवान् पुरुष भी न हुआ होगा। यह जोड़ी सचमुच प्रशंसा के योग्य थी। इन्हीं दोनों का परस्पर प्रेम भी शोभा पाता था।

एक दिन की बात है कि जब रात में चारों ओर चांदनी छिटक रही थी और भगवान गोप तथा गोपियों के साथ खेल रहे थे तब वृषासुर आया। वह बड़े ज़ोर से मेघ के समान गरजने लगा, अपने खुरों से धूल उड़ाने लगा और शरीर के

धक्के से पेड़ों को गिराने लगा। सब गोपिकायें डर कर कृष्ण के गले में आ लिपटीं। कृष्ण ने देखा कि वह मुझे मारने के लिये सींग उठाये आ रहा है। उन ने झट उस का गला पकड़ लिया और उठाकर ऐसे ज़ोर से पटक दिया, जिस से वह तुरत ही मर गया। इसी प्रकार कंस के प्रधान दीवान "अरिष्टासुर" को भी मार डाला। अब धीरे धीरे भगवान की आश्चर्य भरी बातें चारों ओर फैलने लगीं। उस के दूसरे ही दिन कंस का परम मित्र "केशी" घोड़े का रूप बन कर आया। वह अपनी खुरों से पृथ्वी खोदने लगा। उस के सिर पर बड़ी बड़ी सींगें थीं और तीन कान थे। वह बड़े ज़ोर से हिनहिनाने लगा, जिस से सारा बन कांप उठा। वह मुंह खोल कर और पैर उठा कर भगवान पर झपटा। भगवान ने उसे पकड़ कर गिरा दिया और उस के मुंह में हाथ लगा कर फाड़ दिया। उस का मरना सुन कर कंस को बड़ा दुःख हुआ। उस ने अपने बुड्ढे मन्त्रियों को बुलाकर कहा—

"यह बड़ी लज्जा की बात है कि हमलोग पर्वत के समान हैं, पर तृण के समान दो बालकों से निरादर पा रहे हैं। उद्धव, शनि, अक्रूर, शतधन्वा, विदूरथ, भोज आदि मेरे साथी हैं। वे लोग ध्यान से मेरी बात सुनें। मैं वसुदेव को अपना पूज्य बहनोई समझ कर बड़ी प्रीति तथा प्रतिष्ठा करता था। उन्हीं ने चुपचाप अपने दोनों लड़कों को धीरे से गोकुल में पहुंचा दिया। वे दोनों लड़के मेरे शोक के पौधे बन गये; अब उन में मेरे लिये विषफल लग रहे हैं। नीतिकारों ने सच ही कहा है कि अपनी जाति के लोगों से बहुत डरना चाहिये। देखिये, रावण भी

विभीषण ही के बताये उपायों से मारा गया। अपना आदमी भेद की सब बातें जानता है, इस से वह जब चाहे तब नाश कर सकता है। सिखलाई चिड़ियों ही से दूसरी चिड़ियायें पकड़ी जाती हैं। लकड़ी ही से निकली हुई आग दूसरी लकड़ियों को जला देती है। पेड़ ही के भीतर पैदा हुए कीड़ों से वे पेड़ गिराये जाते हैं। मिट्टी से ही लोहा पैदा होता है, फिर वही कुदाली बन कर मिट्टी ही को खोदता है। पहाड़ों से नदियां निकल कर पहाड़ों ही को गिराती हैं। जाति की कीहुई चोट बड़ी दुःखदायिनी होती है। उस से बचना बड़ा कठिन है। हड्डियों में लोहे के बने हुए बाणों से अधिक चोट पहुंचाते हैं—वे बाण जिन के मुंह पर हड्डियों की नोक लगी रहती है। यद्यपि जाति के लोग जाति ही का धन खाते हैं, पर जाति को धनी देख डाह भी करते हैं। वे दूसरों ही को धनी देख कर प्रसन्न होते हैं, जिन के धन से कुछ भी फल नहीं। वसुदेव ही ने कौन सा अच्छा काम किया कि अपनी जाति के डर और डाह से अपने दोनों पुत्रों को ग्वाला बना दिया? पहले तो मैं ने अपना बन्धुबान्धव समझ कर उन दोनों को छोड़ दिया था, पर अब वे ही मेरी भुजा काटने के लिये तैयार हैं। अब मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। कृष्ण ने "अरिष्ट" और मेरे मित्र "केशी" को मार डाला। उस के भाई बलदेव ने "प्रलम्ब" और "धेनुक" को मारा। अब मुझे क्रोध हो आया है। इसलिये ऐसा उपाय करूंगा जिस से वे दोनों फिर ऐसा न करें।

कंस ने बड़े क्रोध से ऐसा कहा, जिस से अनादर और दुःख प्रगट होता था। उस का वचन सुन कर नीतिचतुर उद्धव ने

कहा "महाराज, हमलोग आप ही के हैं। हमलोगों पर मत क्रोध कीजिये। आप को उचित है कि यदि अपना सेवक क्रोध करे या लोभ करे, डर गया हो वा निरादर पा चुका हो, तो उस को सन्तोप दें। क्रोधी को विनय से, लाभी को धन से, निरादर पाने वाले को आदर से और डरे हुए को धीरज देकर प्रसन्न करें। फूटे हुए जनों को मिला लेने ही से राजा का भय दूर होता है। अपने आदमियों को क्रोध करके अलग कर देना ठीक नहीं। शत्रुता शत्रुता से नहीं नष्ट होती, धधकती हुई आग पानी से बुझती है, न कि आग से। बलराम और कृष्ण आप ही के हैं। वे आप के पुत्र के समान हैं। अपने बन्धु के पुत्रों की रक्षा करने ही से राजलक्ष्मी की रक्षा होती है। यदि राजा अपने परिवार का [illegible]श कर देता है, तो उस का बल नष्ट हो जाता है। यदि राजा [illegible]पने भाई बन्धुओं को अपने राज्य से निकाल देता है, तो वे बन्धु इधर उधर जाकर भीख मांगते हैं। इस से राजाओं की निन्दा होती है और प्रतिष्ठा घटती है। यदि उस का पेट नहीं भरेगा तो वह जरूर दूसरे के दरवाजे जाकर हाथ पसारेगा। सच है, आप के बन्धु के लड़कों का ग्वालों के साथ रहना ठीक नहीं। जब तक वे आप से नहीं फूट गये हैं, तभी तक ही उन्हें मिला लीजिये, नहीं तो पीछे कुछ न हो सकेगा।

इस के बाद अक्रूर ने भी कंस से कहा—"जिस की एक थाली में बैठ कर भाई लोग भोजन नहीं करते और जो अपने ही शरीर के पालन पोषण करने में प्रसन्न रहता है, उस के धन व्यर्थ हैं। जिस के धन दान, भोग, बड़ों के सत्कार, दासों के पालन और

भाई बन्धुओं के खाने में खर्च किये जाते हैं उन्हीं के धन सफल हैं। जिन के दरवाजे पर आकर भाई, बन्धु, ब्राह्मण, याचक और दरिद्र बिना खाये पाये ही लौट जाते हैं उन के घर मरघट के समान हैं। आप की सम्पत्ति समुद्र के समान अथाह है। उन्हीं के भाई बन्धु रामकृष्ण घास पात का बिछौना बिछा कर सोते हैं, यह कैसी बात है? जब सभी अपना ही पूर्व जन्म का किया पुण्य पाप भोगते हैं तब आत्मीय वर्ग का धन व्यर्थ ही है। श्री कृष्ण आप की जाति के एक मनुष्य हैं, पर दीन दुखिया नहीं हैं। उन की केवल लीला ही से देवताओं के पास इतनी सम्पत्ति हैं। जिस समय इन्द्र ने क्रोध किया और मेघों को व्रज बहा देनें की आज्ञा दी उस समय श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धनपर्वत उठा कर सब की रक्षा की। फिर इन्द्र को भी लजाना पड़ा। कालीय सर्प का अभिमान भी नष्ट किया और उस के फन पर अपने चरणों का चिह्न बना कर उस की रक्षा की। जिन का नाम लेने से प्रतिष्ठा होती है, जो अपने गुणों ही के कारण शोभा पाते हैं, जो रण में अपने पराक्रम से विजयी होते हैं, जिन का रूप चन्द्रमा के समान चमकता है, जिन के हाथों में यश है, और जो अपने निश्चल प्रेम से मित्रों के चित्त में आनन्द की वर्षा करते हैं; वे कृष्ण बड़े पुण्य से मिलते हैं। उन का बन्धु बनना बड़े भाग्य की बात है। उन के समान बन्धु आप का दूसरा कौन है, जिन का संग कभी व्यर्थ होने वाला नहीं है, जिन की कृपा से ग्वालों ने इन्द्र को नीचा दिखलाया? यदि आप मेरी बात सच्चे मन से मानें, तो मैं आप के कहने से कृष्ण को लेआऊं। इस समय आप के घर धनुषयज्ञ हो रहा है, इसी बहाने कहिये तो उन्हें बुलाऊं?

अक्रूर की बात सुन कर कंस के हृदय में तो बड़ा दुःख हुआ, पर उस दुःख को छिपा कर उस ने कपट करने की इच्छा से कहा "अच्छा, जाओ, लेआओ।" इस के बाद अक्रूर रथ सज कर ब्रज की ओर चले। मथुरा को छोड़ आगे बढ़े।

मथुरा की सुन्दरता का वर्णन करना कठिन है। बीच में मथुरापुरी थी। उस को चारो ओर छोटे २ ग्राम करधनी के समान शोभा पाते थे। पुरी के बाहर किनारे ही पर हज़ारों खेतों में पके हुए धान झुक रहे थे। मयूर आदि पक्षी उन्हें खाना चाहते थे, जिन्हें गोपियां बड़ी सावधानी से बचा रही थीं। फूलों की धूलों से चारों दिशाएं पीली २ हो रही थीं। नगरी के चारों ओर केलों के सघन वृक्ष लगे थे, जिन की हरियाली से अंधेरा सा छा रहा था। दाखों के पेड़ों के नीचे सघन शीतल छाया फैल रही थी। इन कारणों से जान पड़ता था कि मथुरा के बाहर सदा सांझ ही रहती है।

आगे जाकर अक्रूर ने गोकुल की बाहरी दृश्य देखा। गोकुल के चारों ओर सुहावने सघन वन थे, जिन में ताल, तमाल, साल, केला, आम, आंवला, खजूर, बेल आदि अनेक पेड़ लहलहा रहे थे। कहीं कहीं निर्मल जल वाले स्वच्छ झरने झर रहे थे, जिन के कारण तीर पर उगी हुई घासें तथा लताएं डहडही हो रही थीं। हरियाली की निराली छटा थी। जिस समय गोपिकायें दही मथने लगती थीं, उस समय मेघों की मन्द गर्जन के समान अतिमधुर ध्वनि होती थी, जिसे सुन मयूर नाच उठते थे। उस वन के किनारे ही यमुना बह रही थी, जिस से कलकल ध्वनि

निकलती थी और सुहावनी स्वच्छ पतली लहरें उठती थीं। वहां शीतल, मन्द, सुगन्ध सुहावनी हवा बहती थी, जिस के लगने से बटोहियों की थकावट मिट जाती थी। अक्रूर ऐसा गोकुल देख अत्यन्त आनन्दित हुए।

कृष्ण ने दूतों के मुंह से सुना कि "मेरे वृद्ध पितामह के समान पूज्य अक्रूर जी आये हुए हैं, उन की पूजा करनी चाहिये।" गोपों ने ऐसाही किया भी। वे लोग घी, दूध, मक्खन आदि लेकर अक्रूर से मिले। अब अक्रूर जी बड़े वेग से रथ से उतरे। उन के दोनों कानों में रत्नजटित कुण्डल हिल रहे थे। उन ने दूर ही से श्री कृष्ण को देखा। वे मन में सोचने लगे "मुझ से नारद जी ने कहा था कि वेही पुरातन पुरुष भगवान पृथ्वी का भार उतारने के लिये उत्पन्न हुए हैं। क्या वे ही ये हैं! हा! धन्य हैं! कैसे इन के कमल के समान नेत्र हैं! सारा शरीर मरकत के समान चमक रहा है। जान पड़ता है कि ये अति मधुर सुधाधार से मेरा हृदय शीतल कर रहे हैं। यदु और वृष्णिवंश धन्य है, जिस में भगवान कृष्ण ने अवतार लिया।" वे इस प्रकार ध्यान करते तथा आंखों से अविरल आंसू बहाते बड़ी चाह से भगवान के पास पहुंचे।

बलदेव और श्री कृष्ण ने सिर झुका उन के दोनों पैर छूकर प्रणाम किया। अक्रूर ने दोनों को शुभआशीर्वाद दिया और उठा कर छाती से लगा लिया। फिर आसन पर बैठ कर पूजा लेने के बाद अक्रूर ने श्री कृष्ण से कहा, ऐ श्री कृष्ण! तुम्हारे दर्शन से मेरा हृदय आनन्द के अमृत से

भर गया है। तुम से बातचीत करने से जो सुख उत्पन्न हो रहा है उस के लिये अब हृदय में कहां स्थान नहीं है। उसे कहां रख। वसुदेव बहुत बड़े पुण्यवान् होकर भी अभागे ही बने हैं, जिन ने तुम को पुत्र पाकर भी अपनी आंखों से अब तक नहीं देखा। तुम तीनों लोकों की उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाले हो।

तुम्हारी गुप्त कथा कौन कह सकता है? तुम्हारे ही कारण तुम्हारे पिता कंस की गालियां सुनते हैं। सच है, भावी नहीं टलती। संसार का भार उठाने वाली यह पृथ्वी भी धन्य है, जिस का भार उतारने के लिये तुम ने जन्म लिया है। क्या तुम उस देवकी को भूल गये, तुम्हारा नाम सुनते ही जिस के स्तन से दूध निकल आते हैं? जिस प्रकार राम के बिना कौशल्या बिलखती थी उसी प्रकार देवकी तुम्हारे बिना बिलख रही हैं। कंस के घर धनुषयज्ञ होने वाला है। उस ने तुम को निमन्त्रण दिया है और तुम को ले चलने के लिये मुझे भेजा है। तुम्हारे चलने से यदुवंशी अपने को भाग्यवान् समझेंगे और बहुत ही आनन्दित होंगे। इसलिये नन्द आदि सभी गोप कर (नज़र) लेकर तुम्हारे ही सखा कंस के पास चलें।

यह वचन सुन कर भगवान ने कहा, "मैं आप की आज्ञा नहीं टाल सकता। कल भोर होते ही मैं चलूंगा।" दूसरे दिन भोर होते ही अक्रूर, बलदेव और कृष्ण रथ पर चढ़कर अपने अपने साथियों के साथ मथुरा चले। "मैं राधा से बिना पूछे हा क्यों चला आया" यह बात सोच कर भगवान के मन में बड़ा

दुःख, चिन्ता और शोक हुआ, उन ने एक बार ठंढी सांस ली। वे आगे ही बढ़ते चले जाते थे, पर जान पड़ता था कि ब्रज के सभी वृक्ष, लताएं और कुञ्जें उन का वस्त्र पकड़ कर पीछे खींच रही हैं। इस लिये वे बार बार उन्हीं की ओर मुंह फेर फेर कर उन्हें देखते चले जाते थे। जब उन्हें राधा का रूप, हाव, भाव, विलास और शृंगार याद आता था तब उन का हृदय अधीर हो जाता था। आंखों में मोती के समान आंसू की बून्दें आ जाती थीं। जब भगवान मथुरा चले गये तब सारा ब्रज वियोग की आग में लहराने लगा। गोपिकायें उन का गुण गाकर आंसू बहाने लगीं। पशु पक्षी भी उन्हीं का ध्यान कर दुःख के साथ शब्द करने लगे। चारों ओर उदासीनता छा गई। जब गोपियों को भगवान की बात याद आती थी तब वे मूर्च्छित हो जाती थीं। भगवान तो अक्रूर आदि बड़ों के संकोच के कारण गोपियों से न मिल सके, योंही चले गये, पर गोपियां समझती थीं कि भगवान हमलोगों से किसी कारण उदास होकर चले गये। इसलिये गोपियां सोते, जागते, खाते, पीते, बैठते, उठते, सदा उन्हीं का ध्यान किया करती थीं। रोते रोते उन के वस्त्र सराबोर हो जाते थे। जब से भगवान ब्रज छोड़ कर चले गये तब से ब्रज में सदा वर्षा ऋतु ही रहा करती थी। दूसरी ऋतुओं का दर्शन भी नहीं होता था।

जब कंस ने जाना कि बलराम और कृष्ण आरहे हैं तब उन दोनों को मारने के लिये "चाणूर" और "मुष्टिक" दो पहलवानों को तैनात किया। दोनों भाई नगर में पहुंचे। उन ने देखा कि एक

सेवक राजा कंस के लिये चन्दन, पुष्प आदि सुगन्धित चीज़ें लिये जा रहा है। उन दोनों ने उस से बलात्कार छीन कर चन्दन अपने शरीर में लगा लिया और मालाएं गले में डाल लीं। एक सेवक कंस के पहरने के लिये जो उत्तम उत्तम वस्त्र लिये जा रहा था उस के हाथ से उन्हें भी छीन लिया और अपने अपने शरीर में पहर लिया, जिन से उन की शोभा चौगुनी हो गई। इस प्रकार सज धज कर वे दोनों राजद्वार पर पहुंचे। कोठे पर बैठी हुई देवकी ने उन दोनों को आते देखा। प्रेम के मारे उस की आंखों में आंसू भर आये और स्तनों से दूध की धारा बह चली। कंस ने हाथीवान को पहले ही सिखला दिया था, इसलिये जब दोनों फाटक पर पहुंचे तब हाथीवान ने उन लोगों को हाथी से कुचलवा देने के "कुवलया पीड़" हाथी को आगे बढ़ाया। भगवान उस की चालाकी समझ गये। उन ने उस हाथी के दांत उखाड़ लिये और उन्हीं से हाथी को मारते मारते बेदम कर दिया। हाथी मर कर गिर गया। फिर भीतर पहुंचने पर दोनों भाई चाणूर और मुष्टिक से लड़ने के लिये अखाड़े में आ डटे। कृष्ण ने चाणूर को और बलदेव ने मुष्टिक को बड़ी वीरता से मार डाला। उन दोनों के मर जाने से कंस को बड़ा क्रोध हुआ। वह बड़े ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगा "मारो, मारो, वसुदेव को मारो, उस के दोनों लड़कों को मार डालो और गोपों को दंड दो।"

यह सुनते ही कृष्ण को बड़ा क्रोध हुआ। वे मतवाले हाथी के समान दौड़ कर कंस के पास पहुंच गये। उन्हें देखते ही

सब सभासद् डर गये। डर के मारे सेविकाओं के हाथ से चँवर गिर पड़े। भगवान ने तुरत कंस की चोटी पकड़ कर राज-सिंहासन से नीचे गिरा दिया और उस की छाती पर चढ़ कर उसे मार डाला। झोंके से उस का मुकुट गिर गया और गले की मालाएं टूट कर खस पड़ीं। उस समय कृष्ण का सुन्दर स्वरूप भी नरसिंह के समान भयंकर जान पड़ने लगा और कंस भी हिरण्यकशिपु के समान मर कर गिर पड़ा। कृष्ण ने कंस को मार कर उस के पिता उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठा दिया। फिर दोनों भाई अपनी माता देवकी के चरणों पर जागिरे। माता प्रेम से आंसू की धारा बहाने लगी।

अब दोनों ने गुरु से सारी विद्याएं सीखीं। सीखीं क्या, सारी विद्याएं स्वयं उन्हें आगई। कृष्ण थोड़े ही दिनों के बाद दक्षिण देश के राजा "भीष्मक" की लड़की "रुक्मिणी" को चुरा लाये। वे लक्ष्मी थीं, जो उन्हीं के लिये मनुष्य के घर उत्पन्न हुई थीं। रुक्मिणी के गर्भ से कृष्ण के पहले पुत्र "प्रद्युम्न" का जन्म हुआ। कृष्ण की दूसरी स्त्री "जाम्बवती" के गर्भ से "साम्ब" हुए। श्री कृष्ण के महल में सोलह हज़ार स्त्रियां रहती थीं; उन के गर्भों से भी बहुत लड़के हुए। सब मिल कर लाखों के लगभग हो गये। उन की एक सेना बन गई, जिस का नाम 'नारायणी' रखा गया। प्रद्युम्न का विवाह "चन्द्रसेना" से हुआ, जिस के गर्भ से "अनिरुद्ध" हुए, जो कामदेव के प्रत्यक्ष अवतार थे।

भगवान ने इन्द्र के कहने से गरुड़ पर चढ़ कर आकाश में रहने वाले दैत्यों को अपने चक्र से नष्ट किया। मुर, सुन्द, हयग्रीव,

नटक आदि राक्षस भी उन के चक्र रूपी आग में पतिंगे के समान जल मर गये। सभी को भगवान ने सुदर्शन चक्र से मारा। जब "जरासन्ध" ने आकर मथुरा को घेर लिया तब कृष्ण मथुरा छोड़ कर चले गये और पश्चिम समुद्र के किनारे "द्वारका" पुरी बसाकर रहने लगे। उस पुरी ने अपनी विचित्र शोभा से, अलका, अमरावती, लंका, नागपुरी आदि सभी राजधानियों को लज्जित कर दिया। भगवान ने अपने पराक्रम से समुद्र से उत्पन्न होनेवाले पारिजात वृक्ष को इन्द्र के नन्दनवन से उखाड़ कर अपनी द्वारका में रोप दिया।

इस के बाद कंस के मित्र "काल यवन" ने वृष्णि कुल का नाश करने की प्रतिज्ञा की। यह जानकर भगवान बिना अस्त्र शस्त्र के ही खाली हाथ कालयवन के घर में घुस गये। उस ने इन को पकड़ना चाहा, ये भागे, और वह इन को पकड़ने के लिये उन के पीछे पीछे दौड़ा। दौड़ते दौड़ते इन ने सारी पृथिवी की परिक्रमा कर डाली। वह भी इन को पकड़ने के लिये इन के पीछे पीछे दौड़ता फिरा। अन्त में भगवान हिमवान की एक कन्दरा में घुस गये। वहां राजा मुचुकुन्द सो रहे थे। बहुत पहिले की बात है कि जब राजा मुचुकुन्द ने इन्द्र के सब शत्रु राक्षसों को युद्ध में मारा तब युद्ध के अन्त में उन्हें बड़ी थकावट हुई। उन ने इन्द्र से कहा कि अब मुझे सोने की आज्ञा दीजिये और यह बरदान दीजिये कि—'जो मुझे जगावे वह जल कर भस्म हो जाय।" भगवान् उन्हीं की चारपाई के नीचे छिप गये। कुछ देर के बाद कालयवन भी वहां पहुंचा। उस ने समझा कि कृष्ण

ही यहां आकर सो गये हैं। उस ने बड़े क्रोध से मुचुकुन्द ही को कृष्ण समझ लात मारी। लात लगते ही मुचुकुन्द क्रोधित होकर उठे और क्रोध भरी आंखों से देख कर ही उस राक्षस को जला कर भस्म कर दिया। कालयवन के भस्म होने के बाद मुचुकुन्द ने चारपाई के नीचे छिपे हुए कृष्ण को देख कर पूछा "तुम कौन हो? तुम हो तो बड़े सुन्दर, पर इतने छोटे कैसे हो गये? एँ! तुम तो मेरे घुटने के बराबर भी नहीं हो। क्या अब ऐसा ही समय आगया?"

भगवान ने सब बातें मुचुकुन्द से कहीं। अपना और संसार के सब हाल कह सुनाये। सुन कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने कहा "क्या इतने समय पल के समान बीत गये? क्या यह संसार स्वप्न के समान है? क्या पृथिवी भी सिकुड़ती २ बुड्ढी स्त्री के समान बन गई? ऊह, अब तो इसे देख घृणा होती है। वे मेरे मित्र और सेवक कहां चले गये? अब मुझे राज्य से कुछ काम नहीं।" वे ऐसी ही हज़ारों बातें सोच कर तप करने के लिये कैलाश पर चले गये। भगवान भी घर लौट आये और सब सामाचार अपने परिवार के लोगों से कह सुनाये।

बलि का पुत्र "बाणासुर" था। उस के हज़ारों हाथ थे। उस की सभा में शिवजी सदा आया जाया करते थे। उस की राजधानी का नाम "शोणितपुर" था। वह सारा नगर सुवर्ण और रत्नों से बना हुआ था। उस की एक लड़की थी जिस का नाम ऊषा था। वह बड़ी ही सुन्दरी थी। अथवा यों कहना चाहिये कि उस समय जगत में उस के समान कोई दूसरी स्त्री

थी ही नहीं। एक दिन बाणासुर ने शिवजी से कहा "भगवन! क्या ये मेरे हज़ारों हाथ व्यर्थ ही हो जायेंगे? क्या मैं कभी युद्ध करके इन से लाभ उठाऊंगा?" शिवजी ने कहा "धीरज धरो, वह समय आ रहा है। तुम्हें तुरत युद्ध करना पड़ेगा।"

एक दिन ऊषा अपनी वाटिका में घूमने गई। वहां उस ने शिवजी को विहार करते हुए देखा। यह देख उसे भी विहार करने की इच्छा हुई, पर उस का ब्याह ही नहीं हुआ था, इसलिये वह क्या कर सकती थी। पार्वती जी उस के मन की बात समझ गईं। उन ने कहा—"जो स्वप्न में तुम्हारे साथ आनन्द करेगा वही तुम्हारा पति होगा।" समय पा कर वसन्त ऋतु आ पहुंची। चारों ओर प्रकृति शोभा फैलाने लगी। सारे वृक्ष तथा लताएं फूलों से लद गईं, जिन पर भौंरे बैठ कर मधुर झंकार करने लगे। कोयल, पपीहा, तोता, मैना आदि चिड़ियाएं चहचहाने लगीं। आमों की मञ्जरियों की सुगन्ध चारों ओर फैल गई, जिस से सभी मतवाले से हो गये।

एक दिन की बात है कि रात को ऊषा अपनी ऊंची अटारी पर सो रही थी। उस ने स्वप्न में देखा कि "कोई अत्यन्त रूपवान् राजकुमार मेरे साथ आनन्द कर रहा है।" जब उस की नींद खुली तब उस ने अपनी अटारी पर किसी को न पाया। पर उस का चित्त उस राजकुमार पर ऐसा मोहित हो गया था कि उसे न देख कर वह पागल सी हो गई। उस की सखी "चित्रलेखा" ने उस की विचित्र गति देख कर पूछा "क्यों सखी, तेरी यह गति कैसे हुई।" ऊषा रोकर कहने लगी "सखी, मैं

क्या कहूं । मैं ने स्वप्न में एक परम सुन्दर राजकुमार को देखा है; उस के बिना अब चित्त व्याकुल हो रहा है। उस का शरीर बड़ा ही कोमल था, जिस के छूने से अमृत के समान सुख मिलता था। उस के मुख की सुन्दरता का वर्णन तो मुझ से हो ही नहीं सकता। जब वह याद आता है, तब यही जी में आता है कि "मरजाऊं।" हा! अब उसे कहां पाऊं और किस नाम से ढूढूं!

चित्रलेखा ने कहा "सखी, घबड़ा मत, पार्वती के बरदान से वही तेरा पति होगा। मैं योगबल से सारे जगत का चित्र लिख देती हूं, तू अपने प्यारे को पहचान ले। योगियों के लिये कोई बात कठिन नहीं।" उस ने योगबल से सारे संसार के चित्र ऊषा को दिखलाये। ऊषा अपने प्यारे अनिरुद्ध का चित्र देखतेही पहचान गई, और बोली "ऐ सखी, हां! हां! यही मेरा हृदय चुराने वाला राजकुमार है" चित्रलेखा ने कहा "तू धन्य है, तेरा प्यारा तो श्री कृष्ण का पोता और प्रद्युम्न का बेटा है। इसे तो तूही क्या, देवता, विद्याधर, किन्नर आदि की स्त्रियां भी चाहती हैं। पश्चिम समुद्र के तट पर श्रीकृष्ण की पुरी द्वारका है, जिस की रक्षा वृष्णिवंशी यादव करते हैं। उसी पुरी के राजभवन में वह राजकुमार रहता है। उस का लाना कठिन है, पर तुम्हारे भाग्य के भरोसे जा रही हूं। देखूं, तेरा भाग्य कितनी सहायता करता है। फिर वह आकाश के रास्ते द्वारका पुरी में पहुंची और धीरे से सोये हुए अनिरुद्ध को उठा लाई। यहां आने पर चित्रलेखा ने अनिरुद्ध से ऊषा के स्वप्न की सब बातें

कहीं और उन को महल के भीतर ऊषा के पास भेज दिया। वे ऊषा को देख बहुत प्रसन्न हुए और विधाता की प्रशंसा करने लगे, जिन ने ऊषा की रचना की थी। अनिरुद्ध टकटकी लगाकर ऊषा को देखने लगे। ऊषा तो पहलेही से मोहित थी। उस के आनन्द की सीमा न रही। चित्रलेखा ने उसी समय पहुंच कर कहा "ले, जिस के लिये तू घबड़ा रही थी उस को आज पा गई। अब दोनों एक साथ रह कर आनन्द करने लगे। अनिरुद्ध सदा ऊषा के राजमहलों में छिप कर रहने लगे। योंही कुछ दिन बीते।

होते होते यह बात वाणासुर के कानों तक पहुंची। उस ने बड़े बड़े वीरों को ऊषा के महल में भेजा। ऊषा ने अनिरुद्ध को रोका, पर अनिरुद्ध अपनी प्यारी की बात न मान कर युद्ध करने के लिये महल से बाहर निकल आये। अनिरुद्ध ने लाखों वीरों को मार डाला। अन्त में वाणासुर आप ही लड़ने के लिये आ गया। उस ने तथा उस के सैनिकों ने जितने अस्त्र शस्त्र चलाये उन सभी को अनिरुद्ध ने केवल ढाल तलवार से रोका। वाण ने बरछी चलाई। अनिरुद्ध ने उस के हाथ से छीन उसी पर फेंकी। वाण बड़ा दुखी हुआ, और समझ गया कि सामने आकर लड़ने से मैं कभी नहीं जीत सकूंगा। उस ने माया की रचना की। वह आकाश में जाकर माया से अनिरुद्ध पर सांपों की वर्षा करने लगा और सांपों से अनिरूद्ध को बांध लिया। ऊषा से न रहा गया। वह उसी हालत में अनिरुद्ध के शरीर में जा कर लिपट गई। वाण उस की यह गति देख बहुत क्रोधित हुआ।

इधर जब से अनिरुद्ध भूल गये तब से द्वारका में बड़ी हलचल मच गई। अन्त में नारद जी ने आकर सब समाचार श्रीकृष्ण जी से कह सुनाया। भगवान ने गरुड़ को स्मरण किया, और वे उसी गरुड़ पर चढ़ कर बलदेव तथा प्रद्युम्न के साथ शोणितपुर चले। हज़ार योजन का रास्ता लांघ कर वहां पहुंचना पड़ा। उन लोगों ने वहां जाकर देखा कि शोणितपुर की चारों ओर बड़ी भयावनी आग लगी है। भगवान की आज्ञा से गरुड़ उड़ कर आकाश गङ्गा में चले गये। वहां से अपने पेट में अथाह जल लाकर उस आग को अपनी चोंच से बुझा दिया। अन्त में सब लोग नगर में घुसे। लाखों राक्षसों ने इन लोगों को घेर लिया। भगवान ने सब को चक्र से मार गिराया।

इधर जब अनिरुद्ध नागपाश से बंध गये, तब दुर्गा देवी की स्तुति करने लगे। स्तुति से प्रसन्न होकर दुर्गा ने अनिरुद्ध का नागपाश छुड़ा दिया। वे कूद कर भगवान के पास चले आये। अब बाणासुर युद्ध करने के लिये नगाड़ा बजवाने लगा। फिर दोनों ओर से बड़ी भयावनी लड़ाई होने लगी। गरुड़ से उतर कर बलदेव, राक्षसों को हल से खींच कर मूसल से मारने लगे। शिव जी भी बाणासुर की ओर से लड़ने के लिये आये थे। दोनों ओर से ज्वर छोड़े गये। ज्वरों में बड़ी लड़ाई हुई। अन्त में शिव जी का ज्वर हार गया। तब शिव और कृष्ण से परस्पर युद्ध होने लगा। कृष्ण ने इतने बाण छोड़े कि शिव जी घबड़ा कर रण से भाग चले। अब खुद "बाणासुर" लड़ने के लिये आया। वह हज़ारों हाथों से अगणित बाण छोड़ने लगा। पर कृष्ण ने

अकेले ही अपने वाणों से वाणासुर के हज़ारों वाण काट गिराये। अन्त में भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र से वाण के हज़ारों हाथ एक ही क्षण में काट गिराये। जब वाण के सब हाथ कट गये तब वह शिव जी के पास जाकर उन को प्रसन्न करने के लिये नाचने लगा। शिव जी के वरदान से वह वाण, चतुर्भुज "महाकाल" बन गया और नन्दी के समान शिव जी का प्यारा सेवक बन कर उन्हीं के पास रहने लगा। क्यों न हो, जो शिव जी की पूजा करते हैं उन के सब मनोरथ पूरे होते हैं। फिर श्रीकृष्ण भी ऊषा के साथ अनिरुद्ध को लेकर द्वारका में लौट आये।

जब कंस मारा गया था, तब कंस की दोनों स्त्रियां "अस्ति" और "प्राप्ति" अपने पिता जरासन्ध के पास रोती पहुंची थीं। सब समाचार सुनकर जरासन्ध क्रोधित होकर श्री कृष्ण से लड़ने के लिये आया था और भवगान ने उस को मार भगाया था। जरासन्ध बड़ा ढीठा और साहसी था। यद्यपि उस ने सत्रह बार यादवों पर चढ़ाई की थी और भगवान तथा बलदेव ने हर बार उस को मार भगाया था, तो भी श्री कृष्ण को जरासन्ध के उपद्रव से "द्वारका" पुरी को बसा कर अपने परिवार के साथ उसी में रहना पड़ा था। भगवान अपने हाथ जरासन्ध को मारना नहीं चाहते थे, इस लिये जब युधिष्ठिर यज्ञ करने लगे उस समय जरासन्ध ने उन की आधीनता नहीं स्वीकार की और यह कर देना भी नहीं चाहता था। तब भगवान अर्जुन तथा भीम को साथ ले कर जरासन्ध के पास ब्राह्मण का रूप बना कर पहुंचे। यद्यपि जरासन्ध को इन लोगों का डील डौल देख

कर ब्राह्मण होने में सन्देह हुआ तो भी उस ने इन को ब्राह्मण ही के समान आदर सत्कार करके आने का कारण पूछा। भगवान ने कहा "हम लोग आप से द्वन्द्व युद्ध करना चाहते हैं।" उस ने कृष्ण तथा अर्जुन को छोड़ कर भीमसेन ही को अपने साथ युद्ध करने के लिये चुना। उन दोनों में कई दिनों तक गदायुद्ध हुआ। जब दोनों की गदा टूट गई तब पहलवानों की तरह कुश्ती होने लगी। सत्ताइस दिनों तक लगातार युद्ध होता ही रहा। अन्त में कृष्ण का इशारा पा कर भीमसेन ने जरासन्ध को पछाड़ उस के दोनों पैर पकड़ चीर दिया, जिस से उस के बलवान प्राण पखेरू तुरत निकल गये। उस के मारने के बाद उस के पुत्र सहदेव को राजगद्दी दे कर भगवान घर लौट आये।

जब युधिष्ठिर के यज्ञ में सब लोग आ गये तब यह विचार होने लगा कि "सब से पहले किस की पूजा की जाय।" सहदेव ने भी कृष्ण को चुना। सब सभासदों की भी यही राय हुई, इस लिये युधिष्ठिर ने सब से पहले श्री कृष्ण ही की पूजा की। यह देख शिशुपाल को बड़ा क्रोध हुआ। उस ने भगवान को सैकड़ों गालियां दीं। अन्त में कृष्ण ने अपने चक्र से उस का गला काट दिया, जिस से वह मर गया।

उस के मर जाने के बाद उस का मित्र दन्तवक्र क्रोध करके भगवान से लड़ने के लिये आया। भगवान ने गदा से उसे भी मार डाला। उस का मरना सुन उस का भाई "विदूरथ" ढाल तलवार ले कर लड़ने के लिये आया। कृष्ण ने अपने चक्र से उस का भी काम तमाम किया।

श्री कृष्ण के बाल सखा एक ब्राह्मण "सुदामा" थे। वे बड़े दरिद्र, पर बड़े सन्तोषी थे। उन की स्त्री भी बड़ी पतिव्रता और सन्तोष रखनेवाली थी। दरिद्रता के कारण कभी कभी उन दोनों को उपवास करना पड़ता था। एक दिन उन की स्त्री ने उन से कहा "क्यों जी, सुनने में आता है कि श्री कृष्ण जी तुम्हारे मित्र हैं तो क्यों नहीं उन के पास जाते और कुछ धन लाते, जिस से हम लोगों के दिन सुख से बीते ?" स्त्री की बात मान कर सुदामा विप्र द्वारकापुरी में श्री कृष्ण के द्वार पर पहुंचे। पहले तो द्वारपालों ने इन का फटा पुराना मैला कुचैला भेष देख कर इन को रोका, पर जब इन ने अपने को कृष्ण जी का मित्र बताया तब किसी तरह जाने दिया। श्री कृष्ण जी इन्हें देखते ही आसन से उठ खड़े हुए और बड़ा आदर सत्कार किया। यहां तक कि रुक्मिणी आदि महारानियों ने ही इन के चरण धोए। एक दिन रह कर दूसरे दिन ये बिदा हुए, पर संकोच से कुछ भी न मांग सके। भगवान ने इन के मन की बात समझ ली और इन के घर पर योग द्वारा अथाह सम्पत्ति भेज दी। तब तक ये रास्ते ही में थे। एक ही रात में इन के घर सब सम्पत्तियां आ गईं और मकान भी राजभवनों के समान बन गया। जब ये घर के पास पहुंचे तब अपनी झोपड़ी न पा कर बहुत दुखी हुए। वहां तो राज सी अटारी बन गई थी। उन की स्त्री झरोखे पर बैठ कर झांक रही थी। वह रानियों के समान सज धज कर भीतर से आकर इन को ले गई। ये अपनी अचानक सुधरी हुई दशा देख कर बहुत सन्तुष्ट हुए।

भगवान की अर्जुन पर बड़ी कृपा रहती थी। यहां तक कि इन ने अर्जुन से अपनी बहिन सुभद्रा को चुप के से हर कर ले जाने की राय दे दी। अर्जुन ने वैसा ही किया। बलदेव जी तथा सब यदुवंशी बहुत बिगड़े। पर भगवान ने सब को समझा बुझाकर शान्त किया। जब महाभारत युद्ध हुआ तब भगवान अर्जुन के सारथी बने। वहां ही अर्जुन को गीता का उपदेश भी दिया, जिस से अर्जुन ने बड़े उत्साह से युद्ध किया और अन्त में विजय पाई। भगवान सदा पांडवों का पक्ष किया करते थे। जब महाभारत युद्ध के पहले युधिष्ठिर ने दुर्योधन के साथ जूआ खेला और एक दाव पर द्रौपदी को भी रख कर हार गये, तब दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन द्रौपदी को सभा के बीच बुलाकर उस का वस्त्र खींचने लगा। द्रौपदी अनाथ होकर सच्चे हृदय से भगवान को पुकारने लगी। भगवान ने योगबल से उस का वस्त्र ऐसा बढ़ा दिया था कि दुःशासन खींचता खींचता हार, छोड़ दिया और द्रौपदी को नंगी न कर सका। द्रौपदी की लज्जा की रक्षा हो गई।

एक समय सूर्य्यग्रहण लगा। सब लोग कुरुक्षेत्र में पहुंचे। भगवान, पाण्डव और नन्द ये तीनों भी अपना अपना परिवार लेकर पहुंचे। वहां सब की सब से भेंट हुई। कृष्ण जी नन्द तथा यशोदा से बड़ी भक्ति तथा नम्रता से मिले। अन्त में राधा आदि गोपियों से भी मिले और सब को धीरज देकर कहा कि अब थोड़े ही दिनों के बाद हम और तुम लोग गोलोक में चलेंगे और वहां फिर वैसे ही सदा विहार करते रहेंगे। यहां जो काम करने

के लिये आया हूं, सब पूरा कर रहा हूं। तुम लोग विरह से व्याकुल न होना। अब थोड़े ही दिन की बात है, किसी तरह बिता दो, फिर तो हमलोग मिल कर सुखी होही जायंगे। इस के बाद सब अपने अपने घर गये।

एक दिन की बात है कि, कुछ यदुवंशी एक बालक के पेट पर लोहे का तावा बांध कर उस को स्त्री बना कर दुर्वासा ऋषि के पास ले गये और उस से पूछा "इस के बाद गर्भ से कौन लड़का होगा?" मुनि ध्यान करके उन की ढिठाई समझ गये और क्रोध करके बोले "इस के पेट से जो लड़का होगा वही यदुवंशियों का नाश करेगा।" यह सुन कर लड़के डर गये और उस तावा को टुकड़े टुकड़े करके समुद्र में डाल दिया। उन्हीं टुकड़ों से ऐसे ऐसे वृक्ष उत्पन्न हुए जिन के पत्ते ठीक तलवार के समान कठोर और तेज हुए। एक दिन सब यादव वहां विहार करने गये और शराब पीकर उस के नशे में ऐसे चूर हो गये कि आपस ही में उन्हीं पत्तों को उखाड़ २ कर लड़ने लगे, जिन से सभी यादव आपसही में लड़ भिड़ कर मर गये। श्री कृष्ण तथा बलदेव बच गये। इन दोनों को परिवार के नष्ट हो जाने का बड़ा दुःख हुआ। बलदेव जी तो समुद्रतट पर योगासन लगा कर अपना प्रधान स्वरूप शेष होकर समुद्र में चले गये। इधर श्री कृष्ण जी ने भी योग करके अपना पार्थिक शरीर छोड़ दिया और दिव्य शरीर धारण कर अपने साथ परमप्यारी राधा तथा सारे व्रजमण्डलनिवासियों को लेकर अपने उस परमधाम गोलोक में चले गये, जिस का कभी

नाश नहीं होता। वहां ब्रह्माण्डनायक, भगवान श्री कृष्ण जी, जगज्जननी आद्याशक्ति श्री महारानी राधा के साथ नित्य नूतन विहार कर सुख पूर्वक समय बिताने लगे।

बुद्धावतार।

कुछ समय के बाद सारे संसार में अज्ञान छा गया। संसार-समुद्र में सब डूबने लगे। कलि का उपद्रव चारों ओर बढ़ने लगा। यह दुर्दशा देख कर भगवान को दया आ गई। इस लिये उस की इच्छा हुई कि—"हम शाक्य वंश में राजा शुद्धोदन की स्त्री माया देवी के गर्भ से उत्पन्न हों।" बात भी ऐसी ही हुई। माया देवी ने समय पाकर गर्भ धारण किया। उस गर्भ के धारण करने से रानी की ऐसी शोभा हुई जैसी गर्भ में रत्न रखने वाली पृथिवी और तुरत चन्द्रोदय पाने वाली दिशा की। ठीक समय पर अपनी माता का उदर फाड़ कर भगवान बाहर निकल आये। माता को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। उन का पेट फिर ज्यों का त्यों ठीक हो गया। भगवान को स्नान कराया गया। इस से वे स्वच्छ हो कर सोने की मूर्त्ति के समान चमकने लगे। अब सब देवता आकाश गंगा का परम पवित्र जल लेकर आये। उन देवताओं ने उसी जल से भगवान को स्नान करा कर उन का राज्याभिषेक कर के अपने धाम को चले गये। एक दिन भगवान ने अपने पिता से कहा—"पहले मैं बड़ा सुखी था, अब संसार का बन्धन मुझे पसन्द नहीं है।" यह वचन सुनते ही पिता ने भली भांति विचार कर उस का शरीर देखा तो जान पड़ा कि उन के सब लक्षण तीनों लोकों के स्वामी ईश्वर के समान हैं। उन से सोचा कि इन के जन्म से मेरे वंश की प्रतिष्ठा होगी।

ज्योतिषी लोगों ने आकर कहा कि—"इस बालक के शरीर में सभी लक्षण अच्छे हैं। इस से यह सब राजाओं का राजा होगा अथवा बड़ा ज्ञानी मुनि होगा। बालक ने सब विद्याएं सीख लीं। शस्त्र अस्त्र, चलाने और हाथी, घोड़े पर चढ़ने की रीति भी जान ली। सब बातों की सिद्धि उन्हें मिल गई, इस कारण पिता ने उन का नाम "सिद्धार्थ" रख दिया। वे चाहते थे कि हम याचकों को सभी चीज़ें दान करदें, यहां ही तक नहीं, वे शरीर को भी तृण समझ कर किसी को दे देना चाहते थे। एक दिन वे रथ पर चढ़कर घूमने गये थे। उसी समय उन ने एक बुड्ढे बटोही को देखा, जिस का शरीर बहुत निर्बल तथा पतला हो गया था और सारे शरीर का चमड़ा सिकुड़ गया था। संसार की किसी वस्तु में उस का चित्त नहीं लगता था। सब लोग उस से कुछ घृणा भी करते थे। उसे देख उन ने अपने मन में सोचा—"क्या अन्त में सब के शरीर की यही गति होगी?" फिर उन ने बड़े आश्चर्य से कहा "अरे! यह दुःख देनेवाले बुढ़ापे ही से ऐसा कुरूप हो गया है। इस की वह जवानी कहां चली गई और वे घुंघुराले काले बाल क्या हो गये! इस की कमर झुक गई है, इस कारण यह भूमि ही की ओर देखता चलता है। आंखों से सूझता भी नहीं, यह क्यों कष्ट पाकर भी नगर में घूमता है! यह बुड्ढा क्यों नहीं सन्तोष धारण कर चुप चाप बैठता! इस का सिर घूम रहा है, दम्मा हो गया है, खांसता भी है, गले में कफ रुक कर घर घर कर रहा है। कान, नाक, आंख, जीभ आदि सभी इन्द्रियां निर्बल हो रही हैं। यद्यपि इस की

कोई इन्द्री पूरे तरह नहीं काम कर सकती, तोभी इस का अपने शरीर पर कितना प्रेम है ! ऐसे दुःख में भी वह अपनी माया नहीं छोड़ता। तृष्णा भी इस की हलकी नहीं होती।"

ऐसाही सोचता सोचता राजकुमार जा रहा था। उसी समय उस की नज़र एक मरघट पर पड़ी, जो शोक का प्रधान स्थान है और जहां जाने पर बड़ा विषाद होता है। उन ने भी यही सोचा कि "मनुष्य के शरीर का नाश यहीं होता है। यहां ही से शरीर का फिर पता नहीं लगता। यह संसार बड़ा शत्रु है; यह अवश्य अनित्य है। यह शरीर घिनौनी वस्तुओं से बना है; यह किसी काम का नहीं। अन्त में यह पृथिवी पर पड़ जाता है और नष्ट हो जाता है। इसी शरीर के लिये मूर्ख लोग दूसरे का धन चुराते हैं, दूसरे की स्त्री पर प्रेम करते हैं और युद्ध में दूसरे का शरीर अस्त्र शस्त्रों से काटते हैं। देखो, यह मुर्दा पड़ा है। यह न झूठ बोलता है, न दूसरों की निन्दा करता है और न कठोर वचन बोलता है। निराशता से इस का शरीर शीतल हो रहा है। यह किसी की नौकरी नहीं करता, न परदेश में जाता है, न पाप करता है, न किसी धनी के दरवाजे जाकर गाली सुनता है। इसे इस समय काम, क्रोध, लोभ, मोह कुछ भी नहीं है। यह कैसा सुख से सो रहा है ! शरीर की यही दशा है कि वह इस समय लकड़ी के समान पड़ा है, तुरत यह मिट्टी में मिल जायगा, राख हो जायगा, विष्टा बन जायगा या कीड़ा बन जायगा।

विराग से भरी ऐसी वाणी कह कर फिर चुपचाप सोचने

लगे। उन का चित्त राज्यसुख से हट गया। उन के राजभवन के भीतर साठ हज़ार राजकुमारियां थीं। पर इन के लिये वे पाषाण की मूर्त्ति के समान बे-मतलब की थीं, किसी सुख के लिये नहीं। इसी समय भविष्यत् की बात जाननेवाले ज्योतिषियों ने आकर राजा से कहा "ऐ राजा, तुम्हारा यह लड़का तीनों लोकों का राजा होगा अथवा भगवान् जिन होगा।

उन की ये बातें सुन कर राजा चाहता था कि मेरा लड़का तीनों लोकों का राजा ही हो, इस लिये वह सदा इसी उपाय में रहता था कि मेरा लड़का वन में जाकर तप न करे, वह किसी प्रकार संसार ही में लिपटे। इसी समय सायंकाल हो गया। सूर्य चलते २ थक गये। इस लिये उन ने संसार से उदास होकर विरागी बनकर गेरुआ वस्त्र पहन लिया। वह प्रतापी सूर्य भी अन्त में आकाश से नीचे गिर गया। यों ही जगत की सभी बातें समान चंचल हैं। जो हो, जिस प्रकार अपने बन्धुजनों के वियोग से सज्जन दुखी होते हैं, उसी प्रकार सूर्य के वियोग से कमल मुरझा गये और उन पर शोक के समान अंधेरा छा गया। अब निर्मल चन्द्र उदित हुआ। करुणा के समान उस की स्वेत चांदनी चारों ओर फैल गई। उस ने मोह के समान अंधकार को हटा दिया। वह संसार का उपकार करने के लिये तत्पर था। उस का उगना देख नगर की स्त्रियां सिंगार करने लगीं। यह देख राजकुमार बुद्ध यों सोचने लगे "ये स्त्रियां मेघ के समान अज्ञान में बिजली के समान चमकनेवाली हैं। इन की आंखें हृदय में कांटे के समान चुभ जाती हैं। इन के मुख अमृत से भरे रहते हैं।

पर ये बातें अज्ञानियों के लिये हैं। बुद्धिमान जन इन्हें विष समझ कर त्याग ही कर देते हैं। बस, अब मैं भी इन्हें छोड़ शान्ति-रूपिणी स्त्री के साथ रहूंगा। बिना शान्ति के कहीं सच्चा सुख नहीं।

ऐसा ही सोच कर बुद्धदेव चुप हो गये। जब आधीरात हो गई और पहरेदारों ने फाटक बन्द कर दिये, तब राजकुमार अपने दिव्य प्रभाव के बल कोठे से उतर बाहर चले आये। बाहर आकर उन ने अपने साईस "स्वच्छन्दक" को जगाया और घोड़े "कन्थक" को कसने के लिये कहा। उस पर चढ़ कर साईस को लिये ही आकाशमार्ग से बहुत शीघ्र बारह योजन चले गये। वहां निर्जन वन में जाकर घोड़े से उतर पड़े और उन ने मुकुट कुंडल, हार, कड़े आदि सभी भूषण अपने शरीर से उतार कर साईस को दे दिये। वे अब सच्चे ज्ञान ही को भूषण समझने लगे। उन ने सारथी से कहा "अजी, स्वच्छन्दक! लो, सब गहने ले लो। अब इन से मुझे कुछ काम नहीं। ये सब राजभवन की शोभा हैं। अब तुम घोड़ा ले कर घर लौट जाओ। 'मैं बन में अकेला कैसे रहूंगा' इस के लिये चिन्ता न करना। प्रेम के कारण दुखी भी न होना। देखो, सभी जीव अकेले ही पैदा होते हैं और अंत में अकेले ही चले भी जाते हैं। इस बन में ये वृक्ष ही मेरा छाता बनेंगे, ये हरिन ही मित्र बनेंगे, भूमि ही गुदगुदी पलंग बनेगी, पतली पतली छालें ही कपड़े बनेंगी, सन्तोष ही मेरा खजाना बनेगा; दीनों पर दया ही प्यारी स्त्री बनेगी। इन धनों को कोई नहीं छीन सकता।" ऐसा कह कर उस के सामने

ही राजकुमार ने अपने बाल अपनी ही तलवार से अपने ही हाथों से काट डाले। यह देख कर उस सेवक की आंखों से आंसू की धारा बहने लगी, जिस से उस के सब कपड़े भींग गये। उस के देखते ही देखते राजकुमार एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ गये। वहां जा कर जब सारे संसार के गुरु बुद्ध समाधि करने के लिये आसन लगा कर बैठ गये तब वह पर्वत फट कर सौ टुकड़े हो गया। बुद्ध कुछ उदास हुए, देवताओं ने आकाश में आकर कहा "भगवन्! आप दुखी न हों, आप सारे जगत के गुरु हैं, आप का भार वह पर्वत नहीं सह सकता।" इस के बाद वे "वज्रासन" नामक स्थान में पहुंचे। वहां जा कर लोकोत्तर ज्ञान पाने के लिये उन ने समाधि लगाई।

यह दशा देख कामदेव को बड़ा क्रोध हुआ। वह विराग का बड़ा वैरी है। उस ने बड़ी सुन्दरी सुन्दरी स्त्रियों को समाधि तोड़ने के लिये भेजा। इस के बाद कामदेव की सेना आई। उस ने अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र फेंके, पर वे सभी राजकुमार पर फूल होकर गिरे। यहां तक कि खुद कामदेव ने भी अनेक बाण मारे, पर सभी व्यर्थ हो गये। राजकुमार ज्यों के त्यों अपने आसन पर बैठे ही रह गये। वे पूर्ण ज्ञानी हो गये। ब्रह्मा आदि देवताओं ने आकर उन को एक कमण्डलु और वस्त्र दिया। फिर बुद्ध सब को संसारबन्धन से छुड़ाने के लिये देवता, मनुष्य, सभी को सच्चे धर्म का उपदेश देने लगे।

इधर जब घोड़ा लेकर साईस घर पर पहुंचा, तब सब रोने लगे। राजा पुत्र के वियोग से बहुत दुखी हुए। वे तो पत्थर

की मूर्त्ति के समान अकड़ गये और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब उन्हें चेत हुआ तब देवताओं ने आकर कहा "राजा, मोह छोड़ो। देखो तुम्हारा लड़का "सुगत" हो गया। अब सुर असुर सभी उस की वन्दना करते हैं।" इस के बाद राजा प्रसन्न हो कर अपने पुत्र को देखने के लिये उस निर्जन वन में चले गये। उन के साथ उन के परिवार, मन्त्री और सेना थीं। जब राजा उस आश्रम में पहुंचे और उन ने वन को शान्तिपूर्ण देखा तब वे अपने बन्धु "उदायी" से बोले।" देखो, यहां राक्षस या हिंसा करने वाले पशु भी किसी को नहीं मारते, दुष्टों के चित्त में भी यहां क्रोध नहीं होता, वानर भी पेड़ों के फल नहीं तोड़ते। वे भी खुद गिरे हुए ही फल खा रहे हैं। श्री शिवजी की कृपा से यह बन बड़ा ही सुखद हो रहा है। अहा! यहां नदियां कैसी धीरे धीरे बह रही हैं! हवा कैसी धीरे धीरे शीतल और सुगन्धित होकर बह रही है! वृक्ष भी मुनियों के समान चुपचाप खड़े हैं। वाह! यहां तो जड़ पदार्थों में भी शान्ति विराज रही है।" ऐसे ही कहते हुए राजा आश्रम के समीप पहुंच गये। वहां वे रथ से उतर पड़े। दूर ही से उन ने देखा कि सुर, सिद्ध, नर, नाग, सभी चारों ओर घेर कर खड़े हैं और बीच में बैठ कर सुगत सब को धर्मोपदेश दे रहे हैं। वहां भूमि फोड़ कर एक सोने का कमल निकल आया था, जिस की हज़ारों पंखड़ियां सोने की ही थीं, उसी पर पलोथी लगा कर सुगत बैठे थे। जान पड़ता था कि अमृत से भरे हुए हजारों चन्द्रमा के ऊपर सुमेरु पर्वत स्वरूप धारण कर बैठा है। वे रूपवान् सत्यधर्म थे, उन के शरीर

से ज्ञान का प्रकाश फैल रहा था, जिस से सब का अन्धकार के समान अज्ञान दूर हो रहा था। उन की छाती ऊंची हो रही थी, उन के दोनों हाथ और नेत्र ऊपर की ओर उठे हुए थे। और उन के दोनों ओठ मूंगे और नये पत्ते के समान लाल हो गये थे। मुंह पर सुन्दरता झलक रही थी; नाक बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। यद्यपि कानों में कोई भूषण नहीं थे, तौ भी वे सुन्दर ही जान पड़ते थे। उस बड़े गुणी सुगत को प्रणाम कर राजा ने अपने को धन्य माना। इन्द्र आदि देवता तथा बिम्बिसार आदि राजा और नाग, सिद्ध, यक्ष आदि सभी लोगों ने उन को गुरु मान लिया और बड़े भक्ति भाव से प्रणाम किया और बड़े आदर के साथ सुवर्ण का आसन दिया। सुगत को देखने से राजा को बड़ा आनन्द हुआ। आनन्द से उन की आंखों में आंसू भर आये।

उन ने कहा—"ऐ सुगत, तुम ने अपनी ऐसी दशा क्यों बना रखी है, जिस से परिवार को शोक हो रहा है? तुम तो पहले मणियों के ऊंचे राजभवनों में कोमल रेशमी बिछौने पर सोते थे; अब इन रूखी कंटीली घासों पर कैसे सोते हो? तुम तो मणियों के प्यालों में स्वच्छ शीतल सुगन्ध मधुर जल पीते थे; अब कैसे यह गदला पानी पीते हो, जिस में जंगली हाथी और सूअर लोटते हैं? जिस देह पर चीन का बना रेशमी वस्त्र धारण करना चाहिये? उसी पर क्यों मृगों का कठोर चाम ओढ़ते हो? जिस मस्तक पर रत्नों का मुकुट रखना चाहिये उसी पर क्यों जटाजूट रखते हो?"

राजा ने प्रेम के कारण सारी सभा के बीच बुद्ध से यह बात कही। कारण यह कि उन का चित्त अज्ञान से भरा था। बुद्ध ने धीरे से कहा "जब तक शरीर में प्राण रहते हैं, तभी तक परिवार के सब लोग सेवा करते हैं। किन्तु अन्त में जब प्राण शरीर छोड़कर अलग हो जाते हैं, तब परिवार वाले केवल रोकर संग छोड़ देते हैं। तब धर्म का ज्ञान, सज्जनों का संग और नियम मरने पर भी संग देते हैं। ये ही विरागियों के साथी हैं। राजा कोमल बिछौने पर सोकर भी दुखी रहता है और विरागी रूखी जमीन पर सोकर भी सुखी रहता है। विरागी आशा के बन्धनों से छूट कर और सन्तोष से शरीर शीतल करके सूखी घासों पर भी सुख से सोता है। जो संसार का सुख भोगते हैं वे रोग से पीड़ित होते हैं, वैद्य की दवा करते हैं और इच्छा होने पर वैद्य के डर से भोजन नहीं करते और बड़े नियम से रहते हैं तोभी रोग नहीं छूटता। वह कोमल बिछौना, वह ऊंची अटारी, वे गहने, ये हाथी घोड़े और वे सुख के पदार्थ तभी तक हैं जब तक शरीर में प्राण हैं। किन्तु जब दोनों आंखें झिप जाती हैं, तब सभी व्यर्थ हो जाते हैं। गरमी के दिनों में मोती के हार, बर्फ, चन्दन, पतले रेशमी कपड़े, चन्द्रमा की चांदनी और जाड़े के दिनों में ऊनी कपड़े पहरना, स्त्रियों के अङ्ग में लिपट कर सोना, इसी प्रकार रात को गाना बजाना, नाच रंग रङ्ग करना और दिन में सभा में बैठना, ये सब बातें जिस राजा के लिये होती हैं क्या उस राजा का भी शरीर रह सकता है? क्या उस का शरीर नष्ट नहीं होगा? किस राजा का शरीर अब तक बना

है ? यदि चित्त में निराशा है, तो चन्दन लगाने से क्या ? यदि चित्त में दया है, तो हार से क्या ? यदि कानों में गुरु के उत्तम उपदेश हैं, तो कुण्डलों से क्या ? यदि शील है, तो रेशमी कपड़ों से क्या ?

ऐ राजा, अज्ञान को छोड़ दो, प्रेम से दुःखी मत हो, संसार की चंचलता देखो। जन्म मरण में मत डूबो। इस संसार में करोड़ों मनुष्य बटोहियों के समान आते जाते रहते हैं। इन का कोई अपना या पराया नहीं है।

श्री भगवान बुद्ध ने इस प्रकार अपने पिता को उपदेश दिया, जिस से उन के शरीर का प्रेम और अभिमान नष्ट हो, हृदय में ज्ञान का दीपक के समान प्रकाश हो और जिस माया ने सारे संसार को घेर कर मोह जाल में फंसा लिया है उस का नाश हो। उन्हीं बुद्ध भगवान के उपदेश से सात करोड़ शाक्य-वंशी क्षत्रिय ज्ञानी हो गये और उन के चित्त में बड़ी शान्ति मिली। सर्वज्ञ भगवान् की कृपा से निर्वाण पद पा गये। इस प्रकार बुद्ध ने सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैला दिया। कहीं अज्ञान का लेश भी नहीं रहने पाया। फिर भगवान भी समय पाकर निर्वाण पद को पहुंच गये।

—:o:—

कल्कि अवतार।

जब भगवान बुद्ध अपने वैष्णवधाम में चले गये और कलि का प्रभाव बढ़ गया, तब चारों ओर फिर अज्ञान छा गया। सारा भूमण्डल पाप से भर गया। महर्षि लोग पृथिवी छोड़ कर 'कलापि ग्राम' नामक दिव्य देश में चले गये। मुनियों ने चिरञ्जीवी 'मार्कण्डेय' से कहा "भगवन्, यह पापी कलियुग आ गया। क्या इस से भी बढ़ कर पृथिवी पर पाप बढ़ जायगा? नहीं जान पड़ता कि पाप के बोझ से दब कर पृथिवी क्या करेगी। देखिये, ब्राह्मण लोग शराब, घी, दूध, लाख और नमक बेचने लगे और चपरासी बन कर इधर उधर घूमने लगे। कोई ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता, कर्मकाण्ड नहीं करता और धर्मशास्त्र की बात नहीं जानता। सभी धूर्त्त और ठग हो गये हैं। सभी शूद्र की स्त्रियों से प्रेम करते हैं, भांड बन कर हंसी खेल भी किया करते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, मज़दूरी करते हैं, लकड़ी गढ़ते हैं, सभा में आकर भांट बन कर कविता पढ़ते हैं, लोभी तथा क्रोधी हो गये हैं, अज्ञानी हो गये हैं, फांसी लगा कर, विष खाकर, तलवार छेद कर, पहाड़ से कूद कर प्राण त्यागते हैं। हा! ब्राह्मणों की कैसी हालत हो गई!

क्षत्रियों का तो पता ही नहीं लगता, केवल नाम के क्षत्रिय हैं, पर काम क्षत्रियों का नहीं करते। जो नगर की रक्षा करने वाले थे, वे ही सब के धन और प्राण नष्ट कर रहे हैं। वे प्रजाओं

को दुःख देकर पाप से धन कमाते हैं। जैसे नमक के साथ पानी पीने से प्यास नहीं मिटती, वैसे ही धन पाने से उन की लालच नहीं नष्ट होती, वरन और भी बढ़ जाती है। गरीबों की आह सुनकर भी बहरे बने रहते हैं, मद से अन्धे हो रहे हैं, न्याय तो जानते ही नहीं। उन का हृदय निर्दय हो गया है, सारे संसार को दुःख दे रहे हैं, जो नहीं खाना चाहिये वही खाते हैं। उन के खज़ाने के मालिक कायस्थ बन गये हैं, जो अपना ही घर भरना जानते हैं और राजा का धन, नाच रंग राग में खर्च कर देते हैं। सारी पृथिवी ही कायस्थों ही से भर गई है, चारों दिशाएं चोरों से ही भरी रहती हैं। राजाओं की सभा में सभी मूर्ख ही रहते हैं। मंत्री, सेनापति, दरबान, सभापति और पुरोहित, सभी घूस लेने के लिये सदा हाथ ही बढ़ाये रहते हैं, जिस से सारी प्रजा का नाश हो रहा है।

वैश्यों की भी यही दशा है। ये भी बड़े दुष्ट हो गये हैं। सीधे सादे मनुष्यों को ठग लेते हैं, सदा बैरही की बात किया करते हैं, बड़ी जातियों से घिन और नीच जातियों से प्रीति करते हैं। बनियाइनें ब्राह्मणों से ब्याह करती हैं और ब्राह्मणियां बनियों से ब्याह करती हैं। वैश्यों की दया तो न जानें कहां चली गई। मनुष्य यमराज, हलाहल विष, सूर्य, सन्निपात रोग, तीखी तलवार, या काल से बच भी सकता है, पर दुष्ट तथा निर्दय बनिये से नहीं बच सकता। इन्हीं लोगों के घर खाने पीने की चीजें बिकती हैं। यदि वे चीजें ठीक न हों, तो सब मनुष्यों के प्राण व्यर्थ ही चले जायेंगे। वैश्यों को कलिकाल के दांत

समझना चाहिये। जब कलि का प्रभाव बढ़ता है तब वैश्य भी अपना धर्म छोड़ देते हैं।

शूद्र लोग क्षत्रिय बन रहे हैं, वैश्य बन रहे हैं, ब्राह्मण बनकर वेद भी पढ़ाते हैं, गुरु बनते हैं, यज्ञ कराते हैं, धर्मोपदेश देते हैं और श्राद्ध में भोजन करते हैं। राजा लोग ब्राह्मणों की स्त्री और धन छीन लेते हैं। ब्राह्मण शूद्रों का नौकर बनते हैं, शूद्रों का शिष्य बनते हैं, उन का चरण पूजते हैं और प्रणाम करते हैं। यजमान लोग ब्राह्मणों को दान दी हुई पृथिवी भी उन से छीन लेते हैं। इस प्रकार कलि में चारों वर्णों का धर्म नष्ट भ्रष्ट हो गया है। सभी जातियां दूसरी जाति से विवाह कर लेती हैं, जिस से असंख्य वर्णसंकर हो गये हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासियों का तो कुछ ठिकाना ही नहीं। सभी वेश्याओं और दासियों को घर में रख कर गृहस्थ बन गये हैं। जिन शास्त्रों को भगवान शंकर ने और वेद के जानने वाले बड़े बड़े ज्ञानियों ने अपने तपोबल से सारी बातें ठीक ठीक समझ कर बनाया था उन्हें तो कोई पूछताही नहीं। सभी नये नये शास्त्र और धर्म बनाकर उपदेश कर रहे हैं। वे गुरु यही सिखलाते हैं कि एक धर्मचक्र बना लो, वहीं बैठकर धोबी, तंतवा, चमार, अघोरी, सब मिल कर एकही थाली में खाओ और एक ही लोटे से पानी पीओ। इसी से सब की मुक्ति होगी। जिस मोक्ष को भृगु, अंगिरा, कश्यप, अगस्त्य, आत्रेय आदि मुनियों ने बड़ी कठिन कठिन तपस्याएं कर के भी नहीं पाया था, उसी मोक्ष को आजकल के धूर्त हंसी खेल ही में पा जाते

हैं। बहुत से वर्णसंकर (दोगले) गुरु बन कर वेद शास्त्रों के अर्थ नष्ट करके सब को झूठा उपदेश देते हैं। और सब को अपना जूठा खिलाकर कह देते हैं कि जाओ अब तुम्हारा मोक्ष हो जायगा। सभी लोभ, क्रोध, डाह, घमंड, असत्यता और निर्दयता से भर रहे हैं। साधु लोग भस्म लगाकर सब को धोखा देते फिरते हैं। छिप कर पराई स्त्रियों का धर्म बिगाड़ते हैं। बनिये अधर्म कर के थोड़े ही दिनों में धनी हो जाते हैं। वैद्य अज्ञानता से दूसरों के प्राण नष्ट कर रहे हैं। घर के मालिक निर्दय हो गये हैं। भाई भाई की स्त्री को अपनी स्त्री बना लेता। स्त्रियां, मरघट की धूल छींट कर, या व्रत तथा टोना करके, अपने पति को वश में कर के, बकरे के समान घर में बांध रखती हैं और आप निर्लज्ज हो कर और भय छोड़ कर चारों ओर घूमा करती हैं। भगवन्! कलि तो अभी तुरत ही आया है, तब इस की यह दशा है! फिर इस के अन्त में क्या दशा होगी!

उन मुनियों की बात सुन कर मार्कण्डेय ने कहा—अभी क्या देखते हो, इस के बाद इस से भी हज़ारों गुण अधिक पाप होंगे, जिस से सब लोग अत्यन्त ही पतित हो जायेंगे। अब वह समय आवेगा कि दस बरस के लड़के सात बरस की कन्या के गर्भ से सन्तान पैदा करेंगे। वे बहुत नाटे, निर्बल और थोड़े दिन जीनेवाले होंगे। दर. तुरुक, यवन, आफगान, शक आदि म्लेच्छों से पृथ्वी भर जायेगी। जब म्लेच्छ चारों ओर पृथ्वी को घेर लेंगे और उन के कारण चारों ओर घनघोर युद्ध होने लगेगा तब

सारी पृथ्वी खून से सराबोर हो जायेगी और कीचड़ मच जायगा। उस समय जब पृथ्वी पर चारों ओर "त्राहि त्राहि" की पुकार मच जायेगी तब ब्राह्मण के "कल्कि" कुल में एक बालक उत्पन्न होगा, जिस का प्रकाश सूर्य के समान चमकीला होगा। वह साक्षात् विष्णु भगवान का 'कल्कि" नामक अवतार होगा। और वे प्रभु घोड़े पर चढ़ कर सब म्लेच्छों को मारेंगे। उन की तलवार की तीखी धार से पापी राजाओं के सिर और हाथ काट कर जमीन पर गिर जायेंगे। उन्हीं पापियों के खून से उन्हीं का पाप धोयेंगे। इस प्रकार कल्कि, पापियों को मार कर, पृथिवी का भार उतारेंगे। उस के दूसरे ही दिन से फिर सत्ययुग का प्रारम्भ हो जायेगा। यों ही जब जब पृथिवी पर पाप का बोझ बढ़ेगा तब तब भगवान अवतार धारण करेंगे और पृथिवी का बोझ उतारेंगे। पृथिवी का भार ही उतारने के लिये भगवान ने दस अवतार धारण किये हैं।

मार्कण्डेय मुनि की ऐसी बात सुनकर सब ऋषियों ने विश्वास कर लिया और कल्कि भगवान के अवतार की आशा से सन्तोष-पूर्वक सब ऋषि मुनि सन्तोष से सुखी हो कर दिन बिताने लगे। जो मनुष्य भगवान के दसों अवतारों की कथा भक्ति से सुनते हैं उन के सब पाप छूट जाते हैं और सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं।

श्री राजेश्वर मिश्र को, सुत अक्षयवट नाम।
दस औतार कथा लिख्यौ, भक्तन हित सुखधाम॥

॥ इति ॥